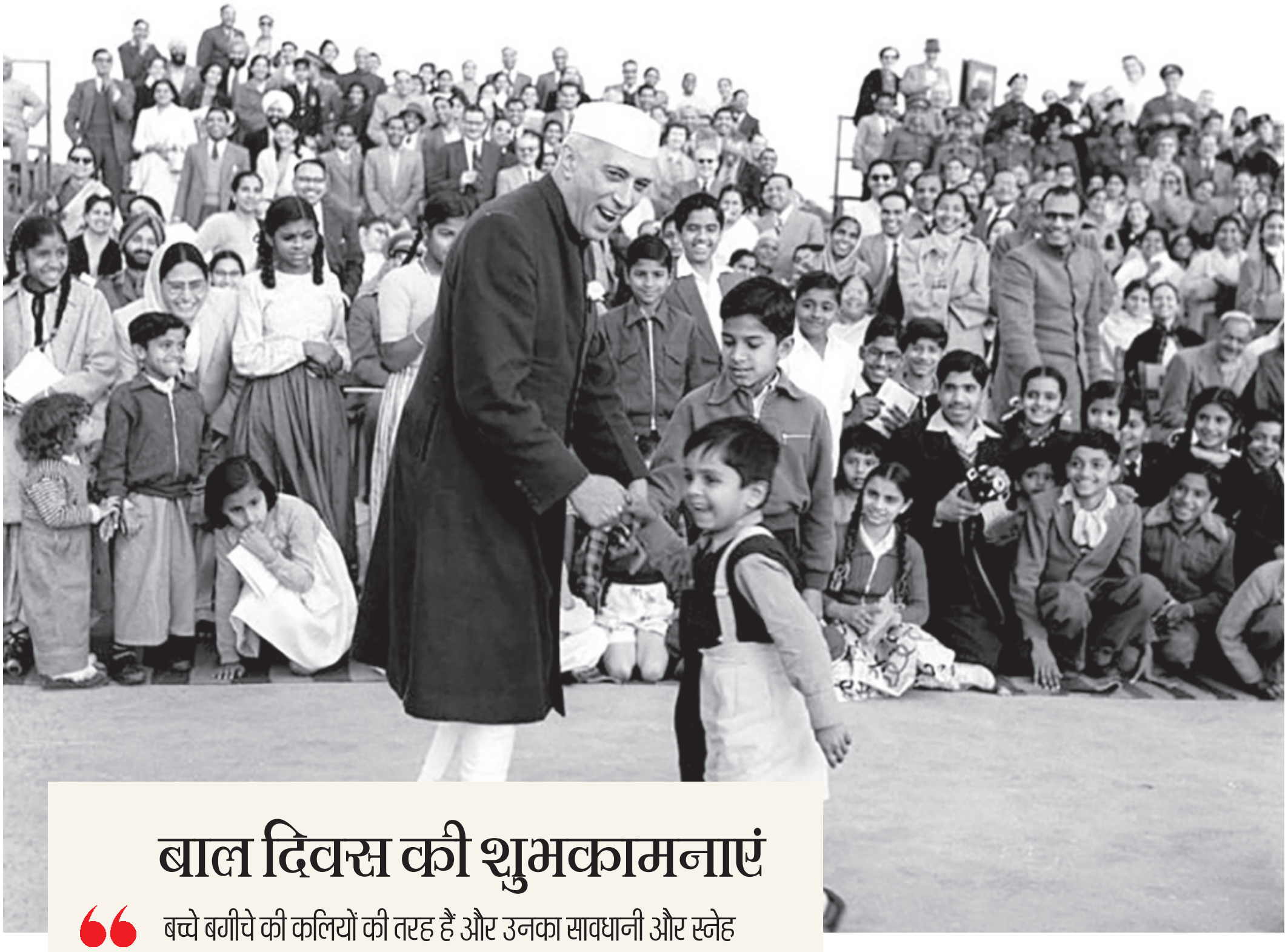
नई दिल्ली
रविवार, 15 नवंबर, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-9 अंक-3 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

www.navjivanindia.com
@navjivanindia
www.nationalheraldindia.com
www.qaumiawaz.com

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru





बाल दिवस की शुभकामनाएं

बच्चे बगीचे की कलियों की तरह हैं और उनका सावधानी और स्नेह के साथ लालन-पालन करना चाहिए, क्योंकि वे राष्ट्र का भविष्य और कल के नागरिक हैं।

भारत के पहले प्रधानमंत्री और आधुनिक भारत के वास्तुकार

पंडित जवाहर लाल नेहरू जी

को उनकी 137 वीं जयंती पर श्रद्धांजलि

अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी

राज्य 360° अमरावती अरुणाचल प्रदेश

सियांग बचाने की जंग

सौरभ सेन

पूर्वी हिमालय में बहने वाली सियांग नदी की अठखेलियां करती हरी जलधारा के किनारे, मूल निवासियों के अधिकारों और राज्य समर्थित विशालकाय निर्माण की महत्वाकांक्षाओं के बीच दशकों पुराना संघर्ष अब ऐसे निर्णायक मोड़ पर पहुंच चुका है जहां से वापसी संभव नहीं दिखती। इस संकट का केन्द्र प्रस्तावित 11,200 मेगावाट की सियांग अपर बहुउद्देशीय परियोजना (एसयूएमपी) है-एक ऐसा विशालकाय बांध जिसे भारत सरकार रणनीतिक जलविद्युत केन्द्र और ऊपरी हिस्से में यारलुंग त्सांगपो पर चीनी निर्माण के खिलाफ निचले इलाके में एक जल-सुरक्षा ढाल के रूप में पेश कर रही है।

इसके बावजूद, अरुणाचल प्रदेश की अबोर और आदि घाटियों में जमीन पर इस परियोजना को राष्ट्रीय सुरक्षा के बजाय अपनी पुश्तैनी मातृभूमि के लिए अस्तित्वगत खतरे के रूप में देखा जा रहा है। इस विरोध की अगुवाई कर रहे हैं मूल अधिकारों के पैरोकार 'अबोर मैन' काटन मायॉन्ग, जिनके हालिया सार्वजनिक बयानों ने स्थानीय प्रतिरोध को दोबारा भड़का दिया है।

विरोध रैलियों, बंद और बड़े प्रदर्शनों के बाद तनाव लगातार गहराता गया है। 31 अक्तूबर को प्रदर्शनकारियों ने नई दिल्ली स्थित अरुणाचल भवन का घेराव किया। उनकी मांग थी कि हिरासत में लिए गए बांध-विरोधी कार्यकर्ताओं को तुरंत रिहा किया जाए, पूरी सियांग घाटी में तैनात सुरक्षा बलों को पूरी तरह वापस बुलाया जाए और प्रारंभिक संभाव्यता रिपोर्ट (पीएफआर) के सर्वेक्षण कार्य पर रोक लगाई जाए।

अपनी हिरासत और बाद में रिहाई के बाद, मायॉन्ग ने संवाददाता सम्मेलन बुलाकर कड़ा संदेश दिया, जिसमें उन्होंने राज्य सरकार की आगे बातचीत की पेशकश को सिरे से खारिज कर दिया। मायॉन्ग ने औपचारिक वार्ताओं के पूरी तरह विफल होने का संकेत देते हुए दो टूक कहा- 'बातचीत का समय अब खत्म हो चुका है। हम 47 सालों से चिल्ला रहे हैं। हमारे दादा-परदादा की पीढ़ी से लेकर हमारी पीढ़ी तक, हमारा रुख बिल्कुल साफ रहा हैः सियांग बांध किसी भी कीमत पर नहीं बनेगा। या तो आपको पूरे आदि समुदाय का नामोनिशान मिटाना होगा, अन्यथा यह कभी नहीं बन सकता।'

मायॉन्ग की यह दो-टूक चेतावनी आदि समुदाय की गहरी चिंताओं को सामने लाती है-एक ऐसी अनुसूचित जनजाति जिसकी सांस्कृतिक पहचान, पारंपरिक शासन व्यवस्था और ऐतिहासिक इलाका मुख्य सियांग नदी से जुड़ी है। एसयूएमपी विशालकाय बांध के खिलाफ मायॉन्ग का प्रतिरोध पर्यावरण संरक्षण, मूल निवासियों के अधिकार, प्रशासनिक विसंगतियों की पड़ताल और स्थानीय आत्मनिर्णय के सवालों को एक साथ जोड़ता है।

मायॉन्ग ने साफ किया है कि बांध-विरोधी आंदोलन विकास का विरोधी नहीं है। उन्होंने सियांग की मुख्य जलधारा पर कंक्रीट का एक विशालकाय ढांचा खड़ा करने के बजाय, नदी की छोटी सहायक नदियों पर सूक्ष्म या लघु जलविद्युत परियोजनाएं बनाने की वकालत की। स्थानीय कार्यकर्ताओं का तर्क है कि मुख्य धारा को अवरुद्ध करने से जलीय पारिस्थितिकी तंत्र स्थायी रूप से बदल जाएगा, पवित्र जनजातीय और बौद्ध स्थल जलमग्न हो जाएंगे, और पीढ़ियों से स्थानीय खेती को सींचने वाला नदी का प्राकृतिक तंत्र हमेशा के लिए बर्बाद हो जाएगा।

मायॉन्ग के विरोध का एक बड़ा कारण लोगों की पुश्तैनी जमीन के सैन्यीकरण को लेकर है। अबोर, आदि और सियांग घाटियों में राज्य सरकार द्वारा केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बलों (सीएपीएफ) और सुरक्षाकर्मियों की भारी तैनाती को स्थानीय जनजातियां सर्वेक्षण दलों को स्वीकार करने के लिए डराने-धमकाने की एक कोशिश के रूप में देखती हैं। मायॉन्ग ने पेमा खांडू के नेतृत्व वाले राज्य प्रशासन से पुलिस उत्पीड़न बंद करने, सुरक्षा बलों को हटाने और आंदोलनों के दौरान जेल में बंद किए गए शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों की रिहाई की मांग की- जिसे राज्य सरकार ने बाद में मान लिया।

अपने सार्वजनिक संबोधनों में, मायॉन्ग ने आरोप लगाया कि सरकारी अधिकारियों ने सहमति के हस्ताक्षर हासिल करने की होड़ में पड़ोसी आदि गांवों और उप-कुलों को आपस में लड़ाने की कोशिश की-जैसे कोमकार को गेकू के खिलाफ, और सिमो को कारको के खिलाफ। मायॉन्ग ने जोर देकर कहा कि समुदाय की सच्ची सहमति के लिए सभी 60 प्रभावित गांवों के बीच पूर्ण सर्वसम्मति आवश्यक है, और उन्होंने दावा किया कि 99 प्रतिशत से अधिक निवासी परियोजना के खिलाफ चट्टान की तरह खड़े हैं।

सियांग परियोजना के खिलाफ नागरिक समाज के इस कड़े प्रतिरोध को राजनीतिक हठधर्मिता से सामना करना पड़ रहा है। अरुणाचल पूर्व से भाजपा सांसद तापिर गाओ ने परियोजना की खुलकर वकालत की है। तेजू (लोहित जिला) में एक हालिया जनसभा के दौरान गाओ ने दावा किया कि सियांग बांध 'चाहे कुछ भी हो, बनकर रहेगा।' राज्य और केन्द्र के अधिकारी जहां एसयूएमपी को चीन के ऊपरी जल-इंजीनियरिंग के खिलाफ एक सुरक्षा ढाल बताकर सही ठहराते हैं, वहीं मायॉन्ग इस दलील को सीधे चुनौती देते हैं।

वह बताते हैं कि सरकार ने एसयूएमपी पर अपने नैरेटिव का रुख ही बदल दिया है-पहले इसे विकास (बाढ़ नियंत्रण और बिजली उत्पादन) बताया गया, और अब इसे राष्ट्रीय सुरक्षा (चीनी जल-बम के खतरे के खिलाफ ढाल) का जामा पहना दिया गया है। उन्होंने कहा कि भारतीय नीति-निर्माताओं और राजनयिकों को सीमा सुरक्षा का बोझ कमजोर सीमावर्ती जनजातियों पर डालने के बजाय, औपचारिक जल-बंटवारा समझौतों पर बीजिंग के साथ कूटनीतिक संवाद पर ध्यान देना चाहिए।

सीमा पार तिब्बत में निचले यारलुंग त्सांगपो पर-जो अरुणाचल में सियांग और असम में ब्रह्मपुत्र कहलाती है-चीन ने 19 जुलाई 2025 को मेदोग जलविद्युत स्टेशन का निर्माण शुरू किया था। दुनिया की सबसे बड़ी जलविद्युत परियोजना के रूप में परिकल्पित इस संयंत्र की नियोजित क्षमता 60 गीगावाट और वार्षिक बिजली उत्पादन लगभग 300 टेरावाट-घंटे (टीडब्ल्यूएच) है-जो थ्री गॉर्जेस बांध की क्षमता से तीन गुना अधिक है। लगभग 150 अरब डॉलर की लागत वाली यह परियोजना 2033 तक पूरी तरह चालू हो जाएगी। यहां पैदा होने वाली बिजली को अल्ट्रा-हाई-वोल्टेज लाइनों के जरिये पूर्वी चीन के औद्योगिक प्रांतों और डेटा केन्द्रों तक पहुंचाया जाएगा।

एक विशाल बांध के बजाय, मेदोग परियोजना में यारलुंग त्सांगपो के 'ग्रेट बेंड' पर नामचा बरवा पर्वत से होकर खोदी गई जल-निकासी सुरंगें और पांच सीढ़ीनुमा (कैस्केडिंग) जलविद्युत स्टेशन शामिल होंगे, जो बेहद कम दूरी में 2,000 मीटर के प्राकृतिक ढलान का उपयोग करेंगे। यद्यपि चीन आधिकारिक तौर पर यह दावा करता है कि यह परियोजना नदी के स्वाभाविक बहाव पर आधारित होगी-जो कागजों पर पानी को टरबाइनों से गुजारने के बाद दोबारा नदी में छोड़ देती है और उसे स्थायी रूप से नहीं रोकती। फिर भी विशेषज्ञ, क्षेत्रीय सरकारें और निचले इलाकों के समुदाय पानी की उपलब्धता पर पड़ने वाले संभावित असर को लेकर आशंकित हैं।

नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन (एनएचपीसी) की एसयूएमपी परियोजना में 300 मीटर ऊंचा एक विशाल कंक्रीट ग्रैविटी बांध बनाना शामिल है। इस बांध के पीछे का जलाशय 9.2 अरब घन मीटर (बीसीएम) पानी जमा करेगा, जिसे अत्यधिक बहाव के दौरान एक जल-सुरक्षा बफर के रूप में और सूखे मौसम में नियंत्रित पानी छोड़ने के लिए डिजाइन किया गया है।

नदी विशेषज्ञों, जलविज्ञानियों और नीति-निर्माताओं के बीच इस बात पर गंभीर बहस चल रही है कि क्या चीन की मेदोग परियोजना वास्तविक जल-बम का खतरा पैदा करेगी या निचले इलाकों में पानी के बहाव को कम कर देगी। इस बहस के केंद्र में सियांग बेसिन के जलविज्ञान पर विश्वसनीय आंकड़ों का भारी अभाव है। तीन चीनी स्टेशन (नुगेशा, यांगचुन और नुक्सिया) जो वर्तमान में भारत के साथ वर्षा के आंकड़े साझा करते हैं, केवल एक आंशिक तस्वीर पेश करते हैं; क्योंकि मेदोग स्थल के आसपास हिमालयी वर्षा का स्वरूप काफी बदल जाता है।

नदी विशेषज्ञ और विद्वान नीलांजन घोष ने 'संडे नवजीवन' को बताया-'ऊपरी यारलुंग त्सांगपो से अचानक बाढ़ या पानी के तेज सैलाब की आशंका को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन यह तर्क सही नहीं है कि मेदोग परियोजना के कारण ब्रह्मपुत्र सूख जाएगी। ऐसा इसलिए क्योंकि ब्रह्मपुत्र का अधिकांश पानी भारत में-सियांग के निचले हिस्से में-निकलने वाली नदियों से आता है।'

घोष ने बताया कि गैर-नौवहन जल उपयोग पर संयुक्त राष्ट्र जलप्रवाह सम्मेलन (यूएनडब्ल्यूसी) पर न तो भारत और न ही चीन ने हस्ताक्षर किए हैं; जबकि अन्य दक्षिण एशियाई देश इसके पक्षकार हैं। जब 1997 में यह संधि संयुक्त राष्ट्र के सामने रखी गई थी, तो चीन ने इसके खिलाफ मतदान किया था और भारत अनुपस्थित रहा था। दोनों देश 1992 के यूएनईसीई जल सम्मेलन-आधिकारिक तौर पर सीमापार जलप्रवाहों और अंतरराष्ट्रीय झीलों के संरक्षण और उपयोग पर सम्मेलन-जैसी क्षेत्रीय संधियों के भी हस्ताक्षरकर्ता नहीं हैं, जो मूल रूप से यूरोप पर लागू थी और 2016 में वैश्विक रूप से खोली गई। इसके बजाय, भारत और चीन ने ऐसे मुद्दों को द्विपक्षीय दायरे में ही सुलझाना बेहतर समझा।

मायॉन्ग ने यही इशारा तब किया था जब उन्होंने भारतीय नीति-निर्माताओं और राजनयिकों से बीजिंग के साथ उच्चस्तरीय संवाद का आग्रह किया था। भारत जहां बांग्लादेश के साथ गंगा जल-बंटवारा समझौते (जिसकी मियाद इसी वर्ष दिसंबर में समाप्त हो रही है) पर बातचीत की तैयारी में है, वहीं सियांग का विवाद कूटनीतिक रूप से एक नया भंवर खड़ा कर सकता है; विशेषकर ऐसे समय में जब स्थानीय जनजातीय समुदाय अपने संभावित पर्यावरणीय विनाश और विस्थापन के खिलाफ आर-पार की लड़ाई लड़ रहे हैं। ■



सियांग अपर बहुउद्देशीय परियोजना के विरोध में आयोजित सामुदायिक बैठक में आदि जनजाति के सदस्य

सच्ची सहमति सभी 60 प्रभावित गांवों की पूर्ण एकजुटता से ही संभव है, जबकि हकीकत यह है कि 99 प्रतिशत स्थानीय आबादी इस महा-परियोजना के पूरी तरह खिलाफ खड़ी है

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं

राज्य 360° चंडीगढ़ पंजाब

पंथक मतदाता: ननकाना साहिब से इंस्टाग्राम तक

हरजेश्वर पाल सिंह

साल भर पहले इसी महीने, तरनतारन उपचुनाव में मनदीप सिंह नामक एक अल्पज्ञात निर्दलीय प्रत्याशी ने लगभग बीस हजार वोट हासिल किए थे। वह न तो जीता और न दूसरे स्थान पर रहा, लेकिन माझा के गढ़ में कांग्रेस को जरूर चौथे स्थान पर धकेल दिया। उसे जेल में बंद सांसद अमृतपाल सिंह का समर्थन था और उन लोगों का आशीर्वाद जिन्हें पिछले तीस सालों में पंजाब के राजनीतिक विश्लेषकों ने कम-से-कम तीन बार खारिज कर दिया थाः यानी पंथक वोटर।

पंथ का अर्थ है 'मार्ग'। गुरु गोबिंद सिंह के बाद गुरु सत्ता गुरु ग्रंथ और गुरु पंथ में समाहित हो गए, जिससे समूचा समुदाय संप्रभु बन गया। 'मीरी-पीरी' यानी आध्यात्मिक और लौकिक सत्ता की दो तलवारों के साथ धर्म और राजनीति को कभी अलग-अलग खानों में नहीं रखा गया। आरंभिक अकालियों ने दो टूक कहा थाः ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

ऐसे में, पंथक वोटर वह सिख है जो मुख्य रूप से पंथ के चश्मे से मतदान करता हैः उसके धर्मस्थल, अकाल तख्त और एसजीपीसी जैसी उसकी संस्थाएं, उसका मान-सम्मान। जरूरी नहीं कि वह कोई खालिस्तानी या अमृतधारी ही हो; इनमें कई केश-कटे क्लीन सेव्ड नौजवान यानी मोना सिख भी हैं। उसके लिए कौम हमेशा पार्टी से पहले आती है।

पंथक राजनीति का जन्म 1920-25 के गुरुद्वारा सुधार आंदोलन में हुआ, जब सिखों ने भ्रष्ट और सत्तापरस्त महंतों के चंगुल से ऐतिहासिक धर्मस्थलों को मुक्त कराने की लड़ाई लड़ी। नवंबर 1920 में एसजीपीसी का गठन हुआ और उसी साल 14 दिसंबर को शिरोमणि अकाली दल बना। 1921 में ननकाना साहिब में लगभग 130 सिख शहीद हुए थे। जब 'चाबियां दा मोर्चा' (स्वर्ण मंदिर की चाबियों का संघर्ष) सफल हुआ, तो महात्मा गांधी ने बाबा खड़क सिंह को तार भेजा- 'भारत की आजादी की पहली निर्णायक लड़ाई जीत ली गई।' वर्ष 1925 के सिख गुरुद्वारा अधिनियम ने ऐतिहासिक धर्मस्थलों की कमान एसजीपीसी को सौंपी।

सात दशकों तक पंथक वोटर क्षेत्रीय अकाली राजनीति की रीढ़ बना रहा। उसने पंजाबी सूबा आंदोलन (1966), आपातकाल (1975) और धर्म युद्ध मोर्चा (1982) के दौरान बढ़-चढ़कर गिरफ्तारियां दीं। ऑपरेशन ब्लूस्टार और 1984 के बाद उसका झुकाव गर्मख्यालियों की तरफ हुआः वर्ष 1989 में जेल में बंद सिमरनजीत सिंह मान ने तरनतारन से चार लाख से अधिक वोटों से जीत दर्ज की। इसके बाद इनका आधार खिसकने लगा।

गर्मख्यालियों ने 1992 के चुनावों का बहिष्कार किया, जिससे मतदान 25 प्रतिशत से भी कम रहा। वर्ष 1996 में मोगा सम्मेलन के दौरान प्रकाश सिंह बादल ने अकाली दल का रुख 'पंथ' से मोड़कर 'पंजाब, पंजाबी और पंजाबियत' की ओर कर दिया। 1997 में उन्होंने भाजपा के साथ गठबंधन किया। दो दशकों तक पंथक वोटर बंधुआ वोट बैंक बना रहा।

वर्ष 2015 और 2024 के बीच वे तमाम धागे बिखर गए। बरगाड़ी में बेअदबी, बहबल कलां में गोलीकांड और डेरा प्रमुख को माफी की घटनाओं ने पंथ के साथ बादलों का नैतिक नाता तोड़ दिया। कृषि संकट, नशे का जाल, बेरोजगारी और उसके बाद कनाडा भागने की होड़ ने एक बेचैन पीढ़ी को जन्म दिया, जबकि सोशल मीडिया ने उन्हें बादलों की पकड़ से निकालकर एक खुला मंच मुहैया कराया। किसान आंदोलन ने उन्हें नया आत्मविश्वास दिया और दीप सिद्धू के रूप में एक नया प्रतीक। जब आम आदमी पार्टी के 'बदलाव' का जादू फीका पड़ा, तो नव-पंथिकों ने नए राजनीतिक चेहरे तलाश लिएः संगरूर में मान (2022), तथा अमृतपाल सिंह और सरबजीत सिंह खालसा (2024)। अमृतपाल ने डिब्रूगढ़ जेल में रहते हुए खडूर साहिब से करीब दो लाख वोटों से बाजी मारी।

*

इसके बावजूद, आज का पंथक दायरा 1920 के बाद से सबसे ज्यादा बिखरा हुआ है। दिसंबर 2024 में अकाल तख्त ने सुखबीर बादल को तनखैया घोषित किया। जनवरी 2025 में मुक्तसर के माघी मेले में अमृतपाल के अकाली दल (वारिस पंजाब दे) की शुरुआत हुई। अगस्त 2025 में बागी गुट ने पूर्व जत्थेदार ज्ञानी हरप्रीत सिंह को संकटग्रस्त शिअद का प्रमुख चुना, जो किसी भी अकाली धड़े के पहले दलित नेता बने। मान के शिअद (अमृतसर) के चुनावी मैदान में डटे रहने से एक ही पंथ के लिए चार-चार अकाली दल खड़े हो चुके हैं। तरनतारन में बादल अकाली दल और पंथक प्रत्याशी ने मिलकर करीब पचास हजार वोट हासिल किए, जो आप के विजेता प्रत्याशी से काफी अधिक थे। आपसी बंटवारे के कारण दोनों को हार का मुंह देखना पड़ा।

तो फिर आज पंथक वोटर है कौन? ग्रामीण मालवा का हालिया सर्वेक्षण इसकी झलक देता है। लगभग हर छह में से एक मतदाता पंथ से किसी-न-किसी रूप में जुड़ा है; जबकि दस में से एक अमृतपाल या मान के प्रति निष्ठावान है। निष्ठावान पंथक मतदाताओं में लगभग दो-तिहाई जाट सिख हैं। यानी हर चार में से एक जाट सिख पंथिक विचारधारा की ओर झुका है। इसके बाद रामगढ़िया समुदाय आता है, जबकि दलित सिख लगभग पांचवां हिस्सा हैं। हिन्दू इस दायरे से नदारद हैं।

पंथक वोटर नौजवान पुरुष है और आम मतदाताओं से अधिक शिक्षित। नौजवान जाट सिख पुरुषों में हर तीसरा समर्पित पंथक वोटर है। शिक्षा के साथ इसका समर्थन बढ़ता जाता हैः डिग्रीधारी युवाओं द्वारा पंथक पाले में वोट डालने की संभावना मिडल स्कूल तक पढ़े लोगों की तुलना में दोगुनी से भी अधिक है, जो आम आदमी पार्टी के मुफ्त कल्याणकारी योजनाओं वाले सामाजिक आधार के बिल्कुल उलट है। छात्र सबसे अधिक पंथिक समर्थक समूह हैं, जबकि दिहाड़ी मजदूर सबसे कम। आज का पंथक वोटर किसी किसान परिवार से ताल्लुक रखने वाला बारहवीं पास, हाथ में स्मार्टफोन लिए वही जाट सिख नौजवान है जो नशे और बेरोजगारी से खफा है, सरकारी रेवड़ियों को हिकारत से देखता है, दिल्ली की नीयत पर संदेह करता है, जेल में बंद अपने नेता के प्रति समर्पित है और 'नई पार्टी को एक मौका' देने को तैयार बैठा है।

इनके साथ उनकी माताएं भी मजबूती से खड़ी हैं। कई अधेड़ जाट सिख महिलाएं केवल एक वजह से अमृतपाल का समर्थन करती हैंः 'नौजवानी बचाउंदा' (वह हमारे युवाओं को बचा रहा है)। उनका वोट अपने बेटों की रगों में बहते नशे 'चिट्टा' के खिलाफ है, किसी खालिस्तान के पक्ष में नहीं। नशे का मुद्दा पंजाब के मतदाताओं को एकजुट करता है।

यह स्वाभिमानी समाज है, कोई लाचार तबका नहीं। जहां कई ग्रामीण मतदाता आज भी भगवंत मान की सरकार को ठीक मान रहे हैं, वहीं पंथिक वोटर इसे सिरे से खारिज करता है। बमुश्किल पांच में से एक मतदाता महिलाओं को मिलने वाले नकद पैसे की तारीफ करता है। सर्वेक्षण में एक उत्तरदाता ने तल्ख लहजे में पूछाः 'नंग थोड़ी आं लोक, 1,500 नाल रज्ज जांगे? (क्या लोग भिखारी हैं, जो 1,500 रुपये में मान जाएंगे?)'

यह सियासत जितनी धार्मिक ग्रंथों से जुड़ी है, उतनी ही यह सिख अनख (स्वाभिमान) और दिल्ली की दखलअंदाजी के खिलाफ उपजे गुस्से पर टिकी है।

पंथक वोटर की निष्ठा किसी चौखटे में नहीं बंधी। वर्ष 2024 में अमृतपाल या सरबजीत को वोट देने वाले पांच में से लगभग दो ही इस नई पार्टी के साथ टिके रहने का इरादा रखते हैं। साथ ही, आज के निष्ठावान पंथिक मतदाताओं में से लगभग एक-चौथाई पूर्व में आप के वोटर रहे हैं-और सात में से एक ने 2024 में मतदान ही नहीं किया था। पंथक वोट किसी मजबूत किले की तरह बंद नहीं, बल्कि एक व्यस्त रेलवे प्लेटफॉर्म जैसा है, जहां हर स्टेशन पर यात्री चढ़ते और उतरते रहते हैं। यह एक अकेले नेता के इर्द-गिर्द सिमटा आंदोलन है, जिसे राष्ट्रीय नेताओं से कोई सरोकार नहीं। पार्टी चुनाव चिह्न पर आंख मूंदकर मुहर लगाने वाले पुराने बादल समर्थक के विपरीत, पंथिक वोटर सबसे पहले उम्मीदवार को परखता है।

पंथक कोर के तीन-चौथाई से अधिक लोग अमृतपाल को पसंदीदा चेहरा बताते हैं, जबकि पुराने झंडाबरदार मान अब हाशिए पर हैं। लगभग दस में से नौ पंथक वोटर किसी राष्ट्रीय नेता का नाम तक नहीं लेते; मोदी का प्रभाव यहां न के बराबर है।

गांव की पुरानी चौपाल की जगह अब सोशल मीडिया की रीलों ने ले ली है। पांच में से चार से अधिक लोग राजनीतिक खबरें फेसबुक, इंस्टाग्राम या यूट्यूब से हासिल करते हैं। समर्थन गांव-दर-गांव मजबूती पकड़ रहा है। कुछ गांवों में तो तीन में से दो मतदाता पंथक सोच के साथ खड़े हैं। घटनाएं भी बड़ा असर डालती हैं। अक्तूबर में नशा-विरोधी कार्यकर्ता परविंदर झोटा की हत्या के बाद इलाके के कई लोग रातों-रात पक्के पंथिक मतदाता बन गए।

ग्रामीण मालवा क्षेत्र में पंथक और बादल समर्थक वोट मिलकर कुल मतदाताओं का एक-तिहाई से दो-पांचवां हिस्सा बनाते हैं। यह संख्या बल इस बात का फैसला करने के लिए पर्याप्त है कि पंजाब की गद्दी पर कौन बैठेगा, बशर्ते यह वोट एकमुश्त पड़े। इतिहास गवाह हैः पंथ तब सबसे अधिक ताकतवर रहा जब वह एक अनुशासित जत्थे की तरह आगे बढ़ा, और तब पूरी तरह अप्रासंगिक हो गया जब उसके रहनुमा सिरोपे और चौधराहट के लिए आपस में भिड़े। ■



फतेहगढ़ में आयोजित पंजाब बचाओ रैली में शिरोमणि अकाली दल अध्यक्ष सुखबीर सिंह बादल और अन्य

ज़्यादातर पंथक मतदाता किसी राष्ट्रीय नेता का नाम नहीं लेते; मोदी का ज़िक्र न के बराबर है

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

नई दिल्ली
रविवार, 15 नवंबर, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-9 अंक-3 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru



दास्तान-ए-अग्निवीर: यह नासूर का आधा-अधूरा ही है इलाज 5
पानी का नहीं ठिकाना पर दिखावा क्रूज़ का 7



नेहरू जयंती पर विशेष 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

फ़ोटो: जेटी इमेजेज़



जनगणना 2027 की रूपरेखा नागरिकों की पहचान करना और संभवतः उन्हें निशाना बनाना मुमकिन बना देगी

जनगणना 2027

नागरिकों का एक और फ़र्ज़ी रजिस्टर तैयार किया जा रहा?

हरजिंदर

जनगणना 2027 में 148 करोड़ लोगों से अपनी निजी जानकारियां सरकार को सौंपने की अपेक्षा की जा रही है। सरकार जिस तरह अभूतपूर्व तादात में व्यक्तिगत डेटा जुटा रही है, उससे इस भरोसे पर सवाल खड़े होते हैं। खासकर जब इसके लिए एक ऐसे सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल किया जा रहा है, जिसकी हैकिंग हो चुकी है और जिसकी सुरक्षा व्यवस्था भी शक के दायरे में रही है।

परंपरागत रूप से जनगणना का मकसद आबादी और आवास की जानकारियां जुटाना रहा है, ताकि सार्वजनिक नीतियों में इससे मदद मिले। लेकिन जनगणना 2027 इससे आगे बढ़ रही है। इसमें व्यक्तिगत पहचान के ऐसे विवरण मांगे जा रहे हैं, जो निजता, निगरानी और नागरिकों के डेटा में सरकार की दिलचस्पी को लेकर गंभीर सवाल खड़े करते हैं।

जनगणना अधिनियम, 1948 की धारा 8(1) के तहत 14 अगस्त 2026 को जारी अधिसूचना में घर-घर सर्वे के लिए 40 सवाल तय किए गए हैं। 2011 की जनगणना में 29 सवाल थे। ज्यादातर सवाल सामान्य हैं। मसलन, उम्र, धर्म, भाषा, शिक्षा, पेशा और पलायन से जुड़ी जानकारियां। लेकिन जनगणना 2027 में कुछ अतिरिक्त विवरण भी मांगे जा रहे हैं, जो एक चिंताजनक बदलाव है।

प्रश्न संख्या 35 से 40 तक बैंक खातों की संख्या, मोबाइल नंबर, आधार नंबर, ईपीआईसी (वोटर आईडी) नंबर, पासपोर्ट नंबर और ड्राइविंग लाइसेंस नंबर मांगे गए हैं। 'डाउन टू अर्थ' के अनुसार 1872 से 2011 तक भारत की किसी भी जनगणना में दस्तावेजों के नंबर नहीं मांगे गए थे। प्रश्न संख्या 34 में तो यह भी पूछा गया है कि व्यक्ति ने कोविड-19 का टीका कहां लगवाया था। आखिर इसकी जरूरत क्या है?

इन व्यक्तिगत जानकारियों के जरिये जनगणना के रिकॉर्ड को सीधे सरकारी और निजी डेटाबेस से जोड़ा जा सकता है। इनमें आधार, मतदाता सूची, पासपोर्ट रिकॉर्ड, मोबाइल कनेक्शन और बैंकिंग सिस्टम शामिल हैं। इसका नतीजा यह हो सकता है कि जनगणना महज आबादी का एक गुमनाम आंकड़ा जुटाने के बजाय हर व्यक्ति की विस्तृत प्रोफाइल तैयार करने का जरिया बन जाए।

अर्थशास्त्री दीपा सिन्हा का कहना है कि यह जनगणना की बुनियादी अवधारणा के ही खिलाफ है। वह कहती हैं, 'जनगणना का मकसद लोगों की गिनती करना है, उनकी पहचान करना नहीं।'

सवाल यह है कि इन दस्तावेजों के नंबर दर्ज करने से आखिर कौन-सा सांख्यिकीय उद्देश्य पूरा होगा, जबकि ये नंबर सीधे किसी की पहचान से जुड़े हैं? जनगणना अधिनियम, 1948 और संयुक्त राष्ट्र के जनगणना संबंधी बुनियादी सिद्धांतों में स्पष्ट कहा गया है कि किसी व्यक्ति से जुड़ा जनगणना डेटा गोपनीय रहना चाहिए। अधिनियम की धारा 15 जनगणना रिकॉर्ड को निरीक्षण से सुरक्षा देती है। ऐसे रिकॉर्ड को साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। अगर डेटा को गुमनाम ही रखा जाना है, तो फिर ये नंबर जुटाने का मकसद क्या है?

घरेलू अनुसूची में माता-पिता के नाम, उनका धर्म और जन्मस्थान भी पूछा गया है। जन्मस्थान का विवरण गांव के स्तर तक मांगा जा रहा है। विवाहित लोगों से उनके जीवनसाथी के बारे में भी जानकारी मांगी गई है। डिजिटल अधिकारों के लिए काम करने वाले संगठनों का तर्क है कि पीढ़ियों से जुड़ी ऐसी जानकारियां मौजूदा आबादी की गिनती से कहीं आगे जाती हैं। इनके जरिये सरकार परिवारों की प्रोफाइल तैयार कर सकती है और अलग-अलग पीढ़ियों के लोगों पर नजर रख सकती है।

मुद्दा सिर्फ यह नहीं है कि सरकार को कानूनी रूप से ऐसी जानकारियां मांगने का अधिकार है या नहीं। असली सवाल यह है कि क्या नागरिकों को पता है कि उनसे जुटाई जा रही जानकारियों का इस्तेमाल कैसे होगा? उन तक किसकी पहुंच होगी? डेटा कितने समय तक सुरक्षित रखा जाएगा? और क्या भविष्य में इसे किसी दूसरे सरकारी डेटाबेस से जोड़ा जा सकता है?

नागरिकता और एनपीआर-एनआरसी ढांचे को लेकर पहले हुई बहसों के संदर्भ में देखें तो इतनी बारीकी से निजी जानकारियां जुटाने की कोशिश और उनके इस्तेमाल की स्पष्ट सीमाओं का अभाव गंभीर चिंता पैदा करता है।

नागरिकों के पास जानकारी देने से इनकार करने का विकल्प भी नहीं है। जनगणना में भाग लेना अनिवार्य है। जब लोगों को कानूनी कार्रवाई के डर के बीच अपनी निजी, वित्तीय और पारिवारिक जानकारियां देनी पड़ें, तो उनकी सहमति महज औपचारिकता बनकर रह जाती है। इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन (आईएफएफ) का कहना है कि जब जानकारी देना अनिवार्य हो, तब सरकार की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है कि वह डेटा जुटाने के दायरे और उसके इस्तेमाल को न्यूनतम रखे।

मौजूदा जनगणना की प्रक्रिया ऐसी दिखती है, मानो इसका मकसद आंकड़ों की गुमनामी खत्म करना हो। भारत के पूर्व उप रजिस्ट्रार जनरल के. नारायणन उन्नी कहते हैं, 'ऐसा लगता है कि सरकार इस डेटा का इस्तेमाल 2011 में तैयार किए गए राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर) को अपडेट करने या उसे नए सिरे से तैयार करने के लिए करना चाहती है।'

इसका परिणाम यह हो सकता है कि हमें गुमनाम जनसांख्यिकीय झलक के बजाय बेहद विस्तृत व्यक्तिगत प्रोफाइलिंग मिल जाए

व्यक्तिगत डेटा जुटाने को लेकर चिंताएं तब और गंभीर हो जाती हैं, जब सरकार जनगणना के लिए अमेरिका की कंपनी एसरी से आर्कजीआईएस नाम का भौगोलिक सूचना तंत्र (जीआईएस) सॉफ्टवेयर खरीदने का फैसला करती है। इसका इस्तेमाल नक्शे तैयार करने, जनगणना ब्लॉक बनाने और जनसांख्यिकीय आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए किया जाएगा। भारत के रजिस्ट्रार जनरल के कार्यालय ने इसके 96 लाइसेंस 14.39 करोड़ रुपये में खरीदे हैं।

अमेरिकी साइबर सुरक्षा कंपनी रिलियाक्वेस्ट के शोधकर्ताओं ने एक ऐसे मामले का दस्तावेजीकरण किया है, जिसमें चीन से जुड़े एक सरकारी समूह ने आर्कजीआईएस सर्वर को हैक कर लिया था। शोधकर्ताओं ने इस समूह की पहचान 'फ्लैक्स टाइफून' के रूप में की। हैकरों ने एक साल से अधिक समय तक सर्वर तक अपनी गुप्त पहुंच बनाए रखी।

एसरी का कहना है कि इस सेंधमारी की वजह सर्वर का मैनेजमेंट इंटरफेस था, जो मल्टी-फैक्टर ऑथेंटिकेशन के बिना खुला हुआ था। इसके अलावा, एक अकाउंट को जरूरत से ज्यादा अधिकार दिए गए थे। कंपनी के मुताबिक, यह सॉफ्टवेयर की खामी नहीं, बल्कि उसे इस्तेमाल करने के तरीके में सुरक्षा चूक का मामला था। लेकिन यह सफाई भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं करती।

साइबर कानून विशेषज्ञ पवन दुग्गल का कहना है, 'इस तरह के सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल देश की संप्रभुता के खिलाफ है।' उनका तर्क है कि ऐसे किसी भी सॉफ्टवेयर को इस्तेमाल करने से पहले पूरी सावधानी बरतनी चाहिए और उसका उचित सुरक्षा ऑडिट होना चाहिए। अगर भारत विदेशी सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल से बच नहीं सकता, तो कम-से-कम उसे उसका पूरा सोर्स कोड देखने का अधिकार मांगना चाहिए।

इसके साथ ही अमेरिका का क्लाउड एक्ट भी चिंता का विषय है। इसके तहत अमेरिका में स्थित सेवा प्रदाताओं को अपने नियंत्रण में मौजूद डेटा अमेरिकी अधिकारियों को सौंपना पड़ सकता है। यह नियम तब भी लागू हो सकता है, जब डेटा अमेरिका से बाहर किसी दूसरे देश में रखा हो।

इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन के अपार गुप्ता कहते हैं, 'यह सॉफ्टवेयर भारत के हर नागरिक की भौगोलिक स्थिति से जुड़ी जानकारी दर्ज कर रहा है। कल्पना कीजिए कि यह डेटा भारत सरकार के बजाय किसी और के नियंत्रण में हो। इसके क्या मायने होंगे?'

इस खरीद प्रक्रिया पर भी सवाल उठ रहे हैं। इस सौदे की पड़ताल करने वाले आईएफएफ के मुताबिक, सॉफ्टवेयर के लाइसेंस 'प्रोप्राइटरी आर्टिकल सर्टिफिकेट' के जरिए खरीदे गए। इस व्यवस्था के तहत किसी उत्पाद को प्रतिस्पर्धी निविदा के बिना भी खरीदा जा सकत है।

10 जून 2026 को दिया गया यह ठेका कॉरपोरेट इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड को मिला। इसकी कीमत 14,38,74,322 रुपये थी। निविदा प्रक्रिया में शामिल सभी चार कंपनियों ने एसरी इंडिया का एक ही उत्पाद पेश किया था।

आईएफएफ ने पूछा है कि क्या 2026 में खरीद से पहले कोई नया तकनीकी आकलन किया गया था? भारत के पास पहले से इसरो का 'भुवन' प्लेटफॉर्म मौजूद है। इसके अलावा ओपन-सोर्स जीआईएस सॉफ्टवेयर के भी कई विकल्प हैं। सरकार को बताना चाहिए कि इन विकल्पों पर विचार किया गया था या नहीं। अगर किया गया था, तो उन्हें खारिज करने की वजह क्या थी? सिर्फ किसी भारतीय रीसेलर के जरिए सॉफ्टवेयर खरीद लेने से तकनीकी संप्रभुता सुनिश्चित नहीं हो जाती।

आईएफएफ ने इस खरीद के संबंध में सूचना के अधिकार (आरटीआई) के तहत आवेदन दिए थे। रजिस्ट्रार जनरल के कार्यालय और एसरी इंडिया को पत्र भी लिखे थे। लेकिन उसकी रिपोर्ट प्रकाशित होने तक इनमें से किसी का जवाब नहीं मिला।

जनगणना की प्रक्रिया में नागरिकों की पहचान और उनसे जुड़ी जानकारियों की गोपनीयता बनाए रखना अनिवार्य है। पहले यह काम कागजों और लोगों की मदद से होता था। अब इसे डिजिटल तरीके से अंजाम दिया जा रहा है। इसमें आपस में जुड़े सॉफ्टवेयर, उपकरणों और नेटवर्क का इस्तेमाल हो रहा है। इनमें से हर कड़ी सुरक्षा के लिहाज से जोखिम का एक संभावित बिंदु है।

ऐसे में स्वतंत्र सुरक्षा ऑडिट और जवाबदेही की स्पष्ट व्यवस्था सरकार की न्यूनतम जिम्मेदारी है। आखिर इस जनगणना में 148 करोड़ भारतीयों को हिस्सा लेना है। उनके पास अपनी निजी जानकारियां देने से इनकार करने का कोई कानूनी विकल्प भी नहीं है। ऐसे में सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि नागरिकों की जानकारी पूरी तरह सुरक्षित रहे। ■

पिछले दरवाजे से किए गए बदलाव क्या नहीं हल करते

नंदलाल शर्मा

जनता सड़कों पर क्या उतरी, उसके आंदोलन ने केन्द्रीय निर्वाचन आयोग की नींद उड़ा दी। वोट चोरी के कथित आरोपों से घिरा आयोग अब लगातार नियम बदल रहा है। ताजा मामला दिल्ली, महाराष्ट्र, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, झारखंड, तेलंगाना और नागालैंड में एसआईआर प्रक्रिया के दौरान जिन वोटरों को एएसडीडी करार देते हुए वोटर लिस्ट से हटाया गया है, उनसे दोबारा एन्युमरेशन फॉर्म भरवाने का है।

अब उनसे नए एन्युमरेशन फॉर्म भरने और पहली बार ऐसा न कर पाने का कारण लिखित रूप में देने को कहा जा रहा है। इस बीच, एसआईआर को लेकर जनता के भारी विरोध को नजरअंदाज करना नामुमकिन हो गया, जिसके चलते आयोग 23 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में 'विशेष संक्षिप्त पुनरीक्षण' (एसएसआर) करवा रहा है। जाहिर है एक 'विशेष गहन पुनरीक्षण' के ठीक बाद एक 'विशेष संक्षिप्त पुनरीक्षण' सवालों के घेरे में है! अगर इस एसएसआर के बाद कुछ नाम वापस जोड़ भी दिए जाते हैं, तो इस प्रक्रिया और नई मतदाता सूचियों की निष्पक्षता की गारंटी कौन देगा? जाहिर है, खुद चुनाव आयोग तो नहीं?

पूर्व उप चुनाव आयुक्त नूर मोहम्मद कहते हैं कि 'आयोग अप्रत्यक्ष तरीकों से मतदाता की योग्यता जांचने के तरीके को बढ़ा रहा है। किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह मतदाता से लिखित 'घोषणा' मांगते हुए उसके मतदाता होने की शर्तें ही बदल दे।'

फ़ोटो: जेटी इमेजेज़



कोलकाता में लोग एसआईआर को रद्द करने की मांग को लेकर एकजुट हुए हैं

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के मुताबिक, किसी व्यक्ति के मतदाता बनने की शर्त महज़ इतनी है कि- वह भारत का नागरिक हो और 18 वर्ष से कम उम्र का न हो। मगर चुनाव आयोग एसआईआर प्रक्रिया में एएसडीडी करार दिए गए वोटर्स से मतदाता सूची में शामिल करने के लिए लिखित 'घोषणा' मांगने लगे, तो इसकी वैधानिकता पर सवाल उठने ही थे।

आयोग ने कदम तब वापस खींचे, जब आम नागरिकों, नागरिक समाज संगठनों और विपक्ष ने एकजुट होकर मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार के इस्तीफे, एसआईआर रद्द करने और मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति से जुड़े 2023 के कानून में किए गए बदलावों को वापस लेने की मांग जोर-शोर से उठानी शुरू कर दी (इसके तहत उन्हें कानूनी कार्रवाई से आजीवन छूट मिल जाती है)। अपने अपारदर्शी और मनमाने कामकाज के खिलाफ बढ़ता जनदबाव देख आयोग ने आनन-फानन अपने ही (मनमाने) नियमों में फेरबदल करना शुरू कर दिया।

हालांकि, ज्ञानेश कुमार फिर भी अपने पद पर मजबूती से बने हुए हैं और ऐसे कोई संकेत नहीं हैं कि न्यायपालिका एसआईआर को दी गई अपनी 'क्लीन चिट' पर कोई पुनर्विचार करेगी। राहत यह है कि राष्ट्रीय राजधानी और अन्य जगहों पर हो रहे विरोध-प्रदर्शनों ने यह ज़रूर बता दिया है कि नागरिक अब ज्ञानेश कुमार के नेतृत्व में चुनाव आयोग की गड़बड़ियों के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं।

आयोग के खिलाफ कई गंभीर आरोप हैं: मतदाता सूची से 13 करोड़ से अधिक नामों को गलत तरीके से हटाना, संसद की मंजूरी के बिना 'फॉर्म 6' में बदलाव करना, मतदाता सूची को केन्द्रीय रूप से नियंत्रित करने के लिए ईसीआई-नेट प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करना और एसआईआर के बाद होने वाले चुनावों में हेरफेर करने की साजिश रचना।

आयोग ने जो बड़े बदलाव किए हैं, उनमें 'फार्म 6' से जुड़ा विवाद महत्वपूर्ण है। निर्वाचन पंजीकरण नियम, 1960 के तहत निर्धारित फार्म 6 एक वैधानिक दस्तावेज है, जिसमें औपचारिक संशोधन सिर्फ केन्द्र सरकार ही कर सकती है। लेकिन एसआईआर की प्रक्रिया के दौरान आयोग ने इसके ऑनलाइन संस्करण के साथ एक अतिरिक्त घोषणा जोड़ दी, जिसमें मतदाताओं से पिछली एसआईआर की मतदाता सूची में अपने या अपने माता-पिता/दादा-दादी के नाम से जुड़ी जानकारी मांगी गई थी। इस अतिरिक्त घोषणा को लेकर आयोग के भीतर ही दो निर्वाचन आयुक्तों विवेक जोशी और एस.एस. संधू ने आपत्ति जताई थी। लगातार आलोचना के बीच आयोग ने आख़िरकार 21 अक्तूबर को यह घोषणा ऑनलाइन फार्म 6 से अलग करने का फैसला किया।

ज्ञानेश कुमार अब भी मौजूद हैं और ऐसे कोई संकेत नहीं हैं कि न्यायपालिका एसआईआर को दी गई अपनी क्लीन चिट पर फिर से विचार करेगी

इससे भी दुर्भाग्यपूर्ण यह कि जिन मौजूदा मतदाताओं के नाम ड्राफ्ट सूची से गायब हो गए थे, उन्हें दोबारा पंजीकरण के लिए 'फॉर्म 6' जमा करने को मजबूर किया जा रहा था। 'फॉर्म 6' में आवेदक को घोषणा करनी होती है कि वह पहली बार पंजीकरण करा रहा है और किसी अन्य क्षेत्र में पंजीकृत नहीं है। मतदाताओं को जायज तौर पर यह डर था कि इस पर हस्ताक्षर करने का मतलब झूठी घोषणा करना होगा, जिससे 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम' की धारा 31 के तहत उन पर कानूनी कार्रवाई हो सकती है।

3 नवंबर को, आयोग ने घोषणा की कि एसआईआर ड्राफ्ट रोल से बाहर रह गए पहले से पंजीकृत मतदाता, बिना किसी कार्रवाई के डर के, फॉर्म 6 जमा कर सकते हैं। लेकिन सवाल है कि आख़िर कौन सा कानून या नियम आयोग को यह गारंटी देने का अधिकार देता है, जबकि पूर्व फॉर्म में गैर-कानूनी तरीके से बदलाव उसने खुद किया था?

फॉर्म 6 का मामला ट्रांसपेरेंसी एक्टिविस्ट अंजलि भारद्वाज और अमृता जौहरी द्वारा दाखिल याचिका पर सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट में उठा। कोर्ट ने कहा कि पुराने मतदाताओं को सूची में जोड़ने के लिए एन्युमरेशन फॉर्म या फॉर्म 8 का इस्तेमाल किया जाना चाहिए, न कि लोगों से झूठा घोषणा-पत्र मांगना चाहिए।

7 नवंबर को योगेंद्र यादव, प्रशांत भूषण और अमृता जौहरी के साथ एक बातचीत में अंजलि भारद्वाज कहतीं हैं कि 'एसआईआर की पूरी प्रक्रिया आर्बिट्रेरी हो गई है। फॉर्म 6 भरवाया ही क्यों जा रहा था, क्या आयोग को फॉर्म 8 दिखाई नहीं दे रहा था? हर एक स्टेप पर अकाउंटेबिलिटी को धता बताने के लिए यू-टर्न लिए जा रहे हैं। इलेक्शन कमीशन ने वोटर लिस्ट का मजाक बना दिया है। चुनाव प्रक्रिया पर जनता का भरोसा हिल गया है।'

7 नवंबर 2026 को जारी एक बयान में, 'वोटर अधिकार मंच' ने सवाल उठाया कि हाल ही में लागू सुधारात्मक उपाय महज़ सात राज्यों तक ही क्यों सीमित है? उन राज्यों का क्या, जहां एसआईआर (मतदाता सूची का विशेष पुनरीक्षण) की प्रक्रिया पहले ही पूरी हो चुकी है? पश्चिम बंगाल में तो इस प्रक्रिया के जरिये तैयार की गई मतदाता सूचियों का इस्तेमाल करके चुनाव भी कराए जा चुके हैं।

शेष पेज 4 पर ▸

आर-पार की लड़ाई के मूड में छात्र

'जंतर-मंतर' विस्तार ले चुका है और अब यह महज़ छात्रों के अधिकारों की बात नहीं है

नंदलाल शर्मा

नरेन्द्र मोदी सरकार जंतर-मंतर को एक किले में तब्दील करने में भले कामयाब रही हो, लेकिन वह जुलाई 2026 के छात्र-युवा आंदोलन से पैदा हुई उस ऊर्जा को पूरे देश में फैलने से नहीं रोक पाई, जिसने न सिर्फ यूनिवर्सिटी परिसरों को विरोध-प्रदर्शन के सशक्त केन्द्रों में बदल दिया, बल्कि इन परिसरों को 'जंतर-मंतर' बना दिया है ।

दिल्ली की अंबेडकर यूनिवर्सिटी (कश्मीरी गेट) में छात्रों ने बुनियादी सुविधाओं के लिए 17 दिनों तक भूख हड़ताल की। उनका कहना था कि हर साल लाखों रुपये फीस देने के बावजूद, हमें यूनिवर्सिटी के मुख्य गेट से आने-जाने की अनुमति नहीं है? कैंपस जाने वाले रास्ते छात्राओं के लिए सुरक्षित नहीं हैं? शिक्षक नहीं हैं? खेल का मैदान नहीं है? पीएचडी छात्रों को बायोमेट्रिक हाजिरी लगानी पड़ती है? आख़िर क्यों?

छात्र प्रदर्शन कर रहे थे और प्रशासन ने तीन-स्तरीय सुरक्षा घेरा बनाकर उन्हें कैद कर दिया। सुरक्षा गार्डों को खाना लाने की अनुमति नहीं थी, छात्र बाहर से खाना नहीं मंगा सकते थे। घायल छात्रों के लिए एम्बुलेंस भी अंदर नहीं आने दी गई।

13 अक्तूबर को छात्रों ने आनंद पटवर्धन की डॉक्यूमेंट्री 'जय भीम कॉमरेड' की स्क्रीनिंग करनी चाही तो जबरन रोक दिया गया। प्रदर्शन के पोस्टर फाड़े गए, कई छात्र घायल हुए, कई गर्ल स्टूडेंट्स के कपड़े तक फाड़ दिए गए। अगले दिन पुलिस ने छात्रों को न सिर्फ जबरन हटाया, तोड़फोड़ तथा सुरक्षाकर्मियों से झड़प के फ़र्ज़ी आरोपों में 11 छात्र सस्पेंड भी कर दिए गए। दिल्ली हाईकोर्ट के आदेश पर निलंबन रद्द हुआ। अंबेडकर यूनिवर्सिटी के छात्र इसे अपनी जीत मान रहे हैं, लेकिन छात्रों-युवाओं के प्रतिरोध के सामने विश्वविद्यालय प्रशासन के घुटने टेकने का सिलसिला अब सिर्फ एक कैंपस तक सीमित नहीं है।

जेंडर स्टडीज़ में एमए की छात्रा ब्लेसी कहती हैं: "यह अंबेडकर यूनिवर्सिटी नहीं, तिहाड़ जेल है। जेल में कम-से-कम आपको समय पर खाना तो मिल जाता है। लेकिन यहां कोई छात्र सवाल भी पूछ ले, तो उसका खाना बंद हो जाता है।"



फोटो: ट्विटर इंस्टेग्राम

जामिया मिलिया इस्लामिया के छात्रों ने विजय मार्च निकालकर जश्न मनाया

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में, 21 सितंबर को एमए (उर्दू) के छात्र यासिर फ़हद ने आठ साल से निर्लंबित छात्र संघ चुनावों की बहाली के लिए ऐतिहासिक 'डक पॉइंट' पर अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल शुरू की। 19 दिनों तक चले इस अनशन और छात्रों के विरोध प्रदर्शन के बाद 9 अक्तूबर को विश्वविद्यालय प्रशासन को चुनाव कराने की घोषणा करनी पड़ी और 5 नवंबर को मतदान हुआ। एएमयू की कामयाबी का असर जामिया मिलिया इस्लामिया के छात्रों पर भी पड़ा, जहां उनका संघर्ष मुख्य रूप से 'स्पॉट एडमिशन' में कथित पारदर्शिता की कमी और छात्र संघ चुनावों (दो दशक से निलंबित) को बहाल करने पर केन्द्रित था।

जामिया में यह आंदोलन 12 अक्तूबर को शुरू हुआ। 24 अक्तूबर को, बातचीत के दौरान तोड़फोड़ हो गई। छात्रों ने उनका निजी सामान क्षतिग्रस्त करने और भूख हड़ताल कर रहे छात्रों को अस्पताल ले जाने के बहाने हिरासत में लेने की कोशिश का आरोप लगाया।

एसएफआई के अनुसार, पुलिस ने धारा 163 लगाकर छात्रों को हिरासत में ले लिया। प्रशासन ने कक्षाएं ऑनलाइन करने, लाइब्रेरी और रीडिंग रूम तक छात्रों की पहुंच सीमित करने, हॉस्टल खाली करने का आदेश दिया, लेकिन छात्र अड़े रहे। आख़िर 18 दिन बाद प्रशासन झुका और छात्र संघ बहाली की मांग मानी गई।

जेएनयू में भी छात्र संघ द्वारा शुरू की गई अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल के 17वें दिन, प्रशासन को झुकना पड़ा। अन्य मांगों के साथ वे छात्रसंघ पदाधिकारियों और पूर्व अध्यक्ष का निष्कासन रद्द करने, विरोध प्रदर्शनों से जुड़ी प्रॉक्टोरियल जांच एवं एफआईआर वापस पर भी सहमत हो गए।

छात्र सिर्फ अपने अधिकारों के लिए ही नहीं लड़ रहे। वे कैंपस के 700 से ज़्यादा उन कर्मचारियों के लिए भी एकजुट हैं, जो वेतन कटौती, वैधानिक बोनस न मिलने, मनमाने निष्कासन और अन्य मांगों के ख़िलाफ़ विरोध-प्रदर्शन कर रहे हैं।

इस सारी मुहिम में छात्राएं आगे रही हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में उन्होंने 'हम औरतें आज़ाद हैं' मार्च निकालकर सुरक्षा, आज़ादी और बिना भय के सार्वजनिक जगहों पर मौजूद रहने के अधिकार की मांग की। "तोड़ के रख दो वह समाज, नारी जिसमें बंधी है आज" और "रातों पर भी है हक़ हमारा", जैसे उनके नारे ऐसी पीढ़ी के गुस्से का इजहार हैं, जो पितृसत्ता का वर्चस्व स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

जेएनयू के साबरमती ढाबे पर 'नाइट मार्च' से लेकर दिल्ली यूनिवर्सिटी के 'पिंजरा तोड़' नारे तक, संदेश बिल्कुल साफ थाः "हमें सुरक्षा चाहिए, क़ैदियों जैसी पाबंदियां नहीं।" नेहा, मुदिता और नादिया के नेतृत्व में छात्रों के इन आंदोलनों की खासियत रही कि वे किसी एक झंडे के नीचे नहीं थे, लेकिन अलग-अलग संगठनों से होने के बावजूद एक साथ थे।

पश्चिम बंगाल में सत्यजीत रे फिल्म एंड टेलीविजन इंस्टीट्यूट (एसआरएफटीआई), जादवपुर यूनिवर्सिटी और प्रेसीडेंसी यूनिवर्सिटी के छात्र कथित 'भगवा गुंडागर्दी' के विरोध में एकजुट हैं। 27 सितंबर को, एसआरएफटीआई के छात्रों ने आरएसएस से जुड़े 'अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत' के कार्यक्रम का विरोध किया। उन्होंने सरकारी फंड से चलने वाले कैंपस में राजनीतिक विचारधारा वाले संगठनों की मौजूदगी पर सवाल उठाए। यहां 4 अक्तूबर को, 'बंगीय हिन्दू जागरण मंच' के सदस्यों पर ईंटें और बोतलें फेंकने के आरोप लगे। छह छात्र निष्कासित कर दिए तो छात्रों ने निष्कासन वापसी के साथ कुलपति के इस्तीफे की मांग पर आंदोलन छेड़ दिया।

छात्र अब आरएसएस समर्थित कुलपति या सत्ताधारी तंत्र के दमन से नहीं डरते हैं

जादवपुर यूनिवर्सिटी में 20 अगस्त को एक जनरल बॉडी मीटिंग को लेकर वामपंथी और विद्यार्थी परिषद से जुड़े छात्रों के बीच झड़प हो गई। प्रेसीडेंसी यूनिवर्सिटी में स्वामी विवेकानंद की तस्वीर वाले विद्यार्थी परिषद के एक पोस्टर पर विवाद हो गया। जब से भाजपा ने बंगाल में अपनी पकड़ बनाई है, छात्र राज्य के शैक्षणिक संस्थानों पर आरएसएस के आधिपत्य की कोशिशों के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन कर रहे हैं।

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में फीस वृद्धि और 6,000 सीटें कम करने के खिलाफ जुलाई 2026 में शुरू हुए विरोध-प्रदर्शन अक्टूबर आते-आते तेज हो गए। 6 अक्तूबर को छात्रों ने यूनिवर्सिटी का मुख्य द्वार जाम कर दिया, जबकि छात्राओं ने सुरक्षा और स्वायत्तता के लिए 'फ्रीडम मार्च' निकाला। आईआईएसईआर पुणे के छात्रों ने हॉस्टल के सख्त नियमों के विरोध में कक्षा बहिष्कार किया।

बीएचयू में छात्राओं ने रात 10 बजे के 'हॉस्टल कर्फ्यू' और भेदभावपूर्ण नियमों के विरोध में कैंडल मार्च निकाला और अनिश्चितकालीन धरना दिया। लखनऊ यूनिवर्सिटी में 2 जून से 50 दिनों से ज़्यादा समय तक फीस बढ़ोतरी और अनुशासनहीनता के आरोप में तीन छात्र नेताओं प्रेम प्रकाश यादव, प्रिंस प्रकाश और हर्षित शुक्ला के 'तानाशाहीपूर्ण' निष्कासन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हुआ। पीएचडी स्कॉलर विशाल सिंह कहते हैं, "जंतर-मंतर वाला आंदोलन न हुआ होता (जिसके कारण धर्मेंद्र प्रधान को इस्तीफा देना पड़ा), तो हमारा निलंबन कभी रद्द नहीं होता।"

प्रतिरोध का दायरा गोरखपुर से लेकर पटना तक, पुणे की सावित्रीबाई फुले यूनिवर्सिटी से लेकर मुंबई यूनिवर्सिटी के कलीना कैंपस तक, कलाडी की श्रीशंकराचार्य संस्कृत यूनिवर्सिटी से लेकर मेवात इंजीनियरिंग यूनिवर्सिटी (जहां वक्फ बोर्ड (हरियाणा) और प्रशासन के आश्वासन के बाद प्रदर्शन खत्म हुए) तक विस्तार ले चुका है।

इसने मानसिक स्वास्थ्य के मामले में संस्थागत विफलताओं की भी पोल खोली है। 24 अगस्त को आईआईटी दिल्ली के 31 वर्षीय छात्र ऋषिकेश कुमार की आत्महत्या के बाद 2,000 से अधिक छात्र एकजुट हो गए। 30 महीनों में हुई आठ आत्महत्याओं, अनिश्चितकालीन धरने और ऋषिकेश की मां की भावुक अपील के बाद प्रशासन को हाईकोर्ट के पूर्व जज की अध्यक्षता में जांच समिति बनाने की सुध आई। आईआईटी बॉम्बे में, 18 सितंबर को बीटेक छात्र साहिल वाकोडे की आत्महत्या के बाद 'स्टूडेंट्स लाइव्स मैटर' के नाम से तीन दिन तक विरोध प्रदर्शन चला।

प्रतिरोध की लहर प्रमुख लॉ स्कूलों तक भी पहुंची। अगस्त में, हैदराबाद की 'नेशनल एकेडमी ऑफ लीगल स्टडीज एंड रिसर्च' (नालसर) के 400 से अधिक छात्रों ने अपने दीक्षांत समारोह में मुख्य न्यायाधीश सूर्यकांत को बुलाए जाने का विरोध कर दिया। जिसके बाद बार काउंसिल के चेयरमैन और भाजपा सांसद मनन मिश्रा द्वारा 2026 के पासआउट बैच का एनरोलमेंट रोकने के निर्देश के बाद यह आंदोलन और तेज हो गया। बेंगलुरु की 'नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी' में भी सैकड़ों छात्र और पूर्व छात्र वरिष्ठ न्यायिक अधिकारियों की प्रस्तावित मौजूदगी के विरोध में उठ खड़े हुए।

एसएफआई के राष्ट्रीय अध्यक्ष आदर्श एम. शाजी मानते हैं कि जंतर-मंतर आंदोलन ने छात्रों को संघर्ष करने का नया आत्मविश्वास दे दिया हैः "अब वे आरएसएस समर्थित कुलपतियों या सत्ताधारी तंत्र के दमन से नहीं डरते। छात्र शिक्षा के मूल को बचाने के लिए लड़ रहे हैं।"

कैंपसों में लगातार हो रहे इस प्रतिरोध से एक बात तो साफ हैः लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। जंतर-मंतर विस्तार ले चुका है और सर्वत्र है। असहमति को रोका नहीं जा सकता है। ■

पिछले दरवाजे से किए गए बदलाव क्या नहीं हल करते

पेज तीन का शेष

संगठन ने मांग की है कि जिन राज्यों में एसआईआर प्रक्रिया अपनाई गई थी, वहां मूल एपिक नंबर बहाल किए जाएं और सूची से बाहर रह गए मतदाताओं को फिर से शामिल किया जाए।

इसमें चेतावनी दी गई कि गलत तरीके से हटाए गए नामों को स्पेशल समरी रिवीजन की आड़ में दबाया नहीं जा सकता। दिल्ली में जिस मतदाता सूची के कारण बड़े पैमाने पर नाम हटाए गए और तीन में से एक मतदाता अपने मताधिकार से वंचित हुआ, उसे बीच प्रक्रिया में जारी एक नए पत्र के जरिये किसी भी तरह दुरुस्त नहीं किया जा सकता। इसका एकमात्र ठोस समाधान यही है कि इस त्रुटिपूर्ण एसआईआर को पूरी तरह से रद्द कर दिया जाए और बूथ स्तर पर पारदर्शी सार्वजनिक ऑडिट के जरिए एक नई प्रक्रिया अपनाई जाए।

चुनाव आयोग ने जो अन्य 'यू-टर्न' लिए हैं, उनमें डायरेक्टर जनरल (आईटी) सीमा खन्ना के अधीन विकसित होने वाले नए आईटी मॉड्यूल और पोर्टल पहले अधिकारियों की एक समिति के पास जाएंगे। इसके बाद उन्हें मंजूरी के लिए चुनाव आयोग के सामने रखा जाएगा, जबकि दो चुनाव आयुक्तों (विवेक जोशी और एसएस संधू) ने पहले कहा था कि आईटी मॉड्यूल और पोर्टल उनकी जानकारी के बिना विकसित किए जा रहे थे। इसके साथ ही सीमा खन्ना को फाइलें सीधे आयोग को भेजने के बजाय वरिष्ठ उप चुनाव आयुक्त के ज़रिये भेजने का निर्देश दिया गया है।

वहीं दोनों आयुक्तों संधू और जोशी के द्वारा ईसीआई-नेट (ECINet) के ऑडिट की मांग भी की गई थी। 14 अक्तूबर 2026 को आयोग द्वारा ईसीआई-नेट के ऑडिट के लिए एक समिति गठित की गई, जो जांच करेगी कि ईसीआई-नेट संबंधित कानूनों और नियमों का पालन कर रहा है या नहीं।

प्रस्तावित बदलावों से जमीनी स्तर के अधिकारियों को अधिक अधिकार और स्वायत्तता मिलने की भी उम्मीद है। साथ ही उन राज्यों में विशेष अभियान चलाने का आदेश दिया गया है, जहां एसआईआर प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। इस क्रम में 23 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में विशेष संक्षिप्त पुनरीक्षण (एसएसआर) शुरू हुआ है।

लेकिन ये प्रशासनिक 'बदलाव' महज़ दिखावटी हैं।

30 अक्तूबर 2026 को, एक्टिविस्ट योगेंद्र यादव ने सात सवाल रखे, जिनका जवाब आयोग ने अभी तक नहीं दिया है:

1. एसआईआर का फैसला किसने लिया?
2. ईसीआई ने फॉर्म 6 में कैसे बदलाव किया?
3. आयोग ने इलेक्टोरल रजिस्ट्रेशन ऑफिसर्स (EROs) की शक्तियां अपने आईटी विभाग को कैसे सौंप दीं?
4. पश्चिम बंगाल में 16 लाख मामले किसने दर्ज कराए?
5. एसआईआर के दौरान तार्किक विसंगतियों का पता किस सॉफ्टवेयर ने लगाया?
6. एक साथ इतनी बड़ी संख्या में फॉर्म 7 आवेदन कैसे दाखिल किए गए, और कोई अधिकारी फॉर्म 7 कैसे दाखिल कर सकता है?
7. अगर एसआईआर पूरा हो चुका है, तो फॉर्म 8 के आवेदन अब भी क्यों स्वीकार किए जा रहे हैं? ऐसा ही एक मामला पीलीभीत में सामने आया है। इसकी क्या गारंटी है कि ऐसा कहीं और नहीं हुआ होगा, और आयोग के सिस्टम में इसे रोकने के लिए कोई व्यवस्था क्यों नहीं है?

मजदूर किसान शक्ति संगठन से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ता निखिल डे कहते हैं कि 'आंदोलन जारी रहेगा। नाम जोड़ने और हटाने की पूरी प्रक्रिया एक ढांचे के अंदर है। बीएलओ, ईआरओ सब सरकारी नौकर हैं। इलेक्शन कमीशन सरकार की ही सुनता है। इसलिए हमारा कहना है कि हर चुनाव से तीन महीने पहले वोटर लिस्ट का पब्लिक ऑडिट होना चाहिए।

इसमें आयोग लोगों का नाम पढ़कर बताए कि वह किसे शिफ्ट बता रहा है और किसे डिलीट कर रहा है। यही प्रक्रिया है, जो जनता को और राजनीतिक पार्टियों को भरोसा देगी।' निखिल कहते हैं कि 'मान लो एसआईआर भी रद्द हो जाए। एक अच्छा चुनाव आयुक्त भी आ जाए। तब भी नागरिकों का भविष्य उन्हीं के हाथ में है, और यह हमें स्वीकार नहीं है।'

इस सवाल पर कि आगामी विधानसभा चुनावों से पहले एसआईआर की प्रक्रिया से जुड़े यूटर्न लेकर केन्द्रीय निर्वाचन आयोग अपनी जवाबदेही से बच पाएगा? नूर मोहम्मद कहते हैं कि 'पैच वर्क से काम नहीं चलेगा। इलेक्शन कमीशन ने फॉर्म-6, फॉर्म 7 और फॉर्म 8 को हथियार बना (वेपनाइज) लिया है। एक खास पार्टी इस पूरी प्रक्रिया को सपोर्ट कर रही है। इससे जनता का भरोसा नहीं जीता जा सकता, जब तक कि पूरी प्रक्रिया को ही रद्द न किया जाए। बेहतर तो यही होगा कि आयोग की पूरी टीम को हटा दिया जाए। सरकार इस मामले में पहल क्यों नहीं करती है। चुनाव आयोग के पास कोई रास्ता बचा नहीं है।'

आयोग को अब तक हुए नुकसान के लिए जवाब भी देना ही होगा। ■

सरकारी योजनाओं के बावजूद उत्तराखंड में वीरान हो रहे गांव

पंकज चतुर्वेदी

कभी उत्तराखंड के पहाड़ मनीऑर्डर अर्थव्यवस्था पर टिके थे। गांव का जवान दिल्ली, लखनऊ, देहरादून में या सरहद की किसी चौकी पर नौकरी करता था और हर महीने आया पैसा पीछे रह गए परिवार का चूल्हा जलाए रखता था। तब पलायन था, पर उसमें वापसी की गुंजाइश थी। त्योहार पर लोग लौटते थे, खेत जुतते थे, पुश्तैनी मकान आबाद रहते थे। आज उसी राज्य के 26 साल पूरे होने पर तिबारी और डंड्याली सूनी हैं, आंगनों में झाड़ियां उग आई हैं और दरवाजों पर बरसों से न खोले गए ताले लटके हैं। जिस राज्य की मांग ही पहाड़ के पानी, जवानी और जंगल पर पहाड़ के हक के नाम पर उठी थी, वही पहाड़ अपने लोगों को रोक नहीं पा रहा।

इस संकट को सरकार ने खुद दर्ज किया है। 2017 में गठित पलायन आयोग का गठन 2017 में किया गया। इसे अक्तूबर 2022 में ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग का नाम दिया गया। इसके आंकड़े चौंकाते हैं। 2011 की जनगणना में राज्य में 1,048 निर्जन गांव दर्ज थे। आयोग के अनुसार, 2011 से 2018 के बीच 734 गांव पूरी तरह खाली हो गए और 2018 से सितंबर 2022 के बीच 24 और। राज्य गठन से सितंबर 2022 तक कुल 1,806 गांव निर्जन हो चुके थे, जिनमें अकेले पौड़ी गढ़वाल के 520 हैं। इसके अलावा 565 गांव ऐसे थे जिनकी आबादी आधी रह गई थी। 2018 की रिपोर्ट के अनुसार, 2008 से 2018 के बीच 6,338 ग्राम पंचायतों से 3,83,726 लोगों ने अस्थायी पलायन किया और 3,946 पंचायतों से 1,18,981 लोग स्थायी रूप से गांव छोड़ गए। अगस्त 2025 में जारी रिपोर्ट के मुताबिक, जनवरी 2018 से सितंबर 2022 के बीच 6,436 पंचायतों से 3,07,310 लोग अस्थायी रूप से गए और 2,067 पंचायतों से 28,531 लोग स्थायी रूप से। 2019 में छपी एक अखबारी पड़ताल ने तो हर दिन औसतन 33 लोगों के गांव छोड़ने की बात कही थी और जाने वालों में लगभग 70 फीसदी युवा बताए थे। आंकड़ों के स्रोत और परिभाषाएं अलग हैं, पर दिशा हर जगह एक ही है।

पलायन करने वाले कहां गए, यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं। आयोग के अनुसार, 2018 से 2022 के बीच करीब 35 प्रतिशत लोग नजदीकी कस्बों में बसे, 18 प्रतिशत जिला मुख्यालयों में, 24 प्रतिशत दूसरे जिलों में और 22 प्रतिशत दूसरे राज्यों में। विदेश जाने वाले सवा एक प्रतिशत के आसपास रहे, यानी पलायन ज्यादातर पहाड़ से मैदान की ओर है और राज्य के भीतर ही। पौड़ी से जाने वालों में करीब 37 प्रतिशत दूसरे राज्यों में गए, जबकि देहरादून, हरिद्वार और नैनीताल जैसे मैदानी जिलों में लोग अधिकतर पास के कस्बों में ही बसे।

कारण भी सरकारी दस्तावेजों में दर्ज हैं। 2018 के सर्वे में लगभग आधे लोगों ने रोजगार और आजीविका के लिए गांव छोड़ा, 15 प्रतिशत ने शिक्षा के लिए और आठ प्रतिशत ने इलाज के लिए। 2025 की रिपोर्ट में भी यही तस्वीर हैः करीब 50 प्रतिशत पलायन रोजगार और 15.2 प्रतिशत शिक्षा सुविधाओं की कमी से। इस साल अप्रैल में आईआईटी मद्रास के शोधकर्ताओं का अध्ययन आया, जिसमें खेती से घटती आमदनी, सिंचाई की कमी, बंदरों और जंगली सूअरों से फसल की तबाही और जलवायु परिवर्तन को भी वजह बताया गया। अल्मोड़ा के ग्रामीणों ने शोधकर्ताओं को बताया कि बेहतर इलाज के लिए उन्हें करीब 150 किलोमीटर दूर हल्द्वानी जाना पड़ता है और कई गांवों में स्कूल आठ किलोमीटर दूर है। अध्ययन का सबसे अहम निष्कर्ष यह है कि पलायन का स्वरूप बदल गया है। पहले घर का एक पुरुष कमाने जाता था और बाकी परिवार गांव में रहता था। अब पूरा परिवार ही शहर की ओर शिफ्ट हो रहा है। घरों में ताले लग रहे हैं; और जहां घर नहीं, वहां स्कूल भी नहीं बचता। पौड़ी में 40 सरकारी स्कूल बंद होने की खबर इसी का नतीजा है।

सरकार ने कोशिशें कीं, लेकिन आधी-अधूरी ही। आयोग ने 25 से अधिक अध्ययन रिपोर्टें सौंपीं, सिफारिशों पर दिसंबर 2024 में अंतर-विभागीय बैठक हुई, मुख्यमंत्री पलायन रोकथाम योजना शुरू हुई, जिसके लिए 2026-27 में प्रावधान रखा गया महज दस करोड़ रुपये का, मतलब 474 गांवों में बांटें, तो हर गांव के लिए करीब 21 लाख रुपये। इस साल अप्रैल से नवंबर के बीच सभी तेरह जिलों में प्रवासी पंचायतें आयोजित करने की कार्ययोजना बनी।

फर्राटा सड़कों से चारधाम यात्रा में तीर्थयात्री सीधे ऋषिकेश से केदारनाथ या बदरीनाथ पहुंचकर लौट जाते हैं। रास्ते के गांव खाली के खाली रह जाते हैं



पर आयोग की नवंबर 2025 की रिपोर्ट के मुताबिक, 2020 से अगस्त 2025 के बीच कुल 6,282 लोग अपने गांव लौटे। इनमें 4,769 दूसरे राज्यों से, 1,127 राज्य के भीतर से, 217 नजदीकी कस्बों से और 169 विदेश से आए। मतलब, सिर्फ 2018 से 2022 के बीच 28,531 लोग स्थायी रूप से गए, पर पांच साल में लौटे सिर्फ छह हजार।

पहाड़ में हजारों हेक्टेयर खेत बंजर हो चुके हैं। और सीढ़ीदार खेत ढहते हैं तो ढलानें और कमजोर होती हैं। लोग नहीं रहते तो जंगल की आग बुझाने वाले हाथ नहीं रहते। 2006 के परिसीमन में जनसंख्या घटने से पहाड़ की 40 में से 6 विधानसभा सीटें मैदान में चली गईं और अगले परिसीमन में पहाड़ का प्रतिनिधित्व और घटने का अंदेशा है। सीमांत इलाके की कीमत अलग है। आयोग के मुताबिक, 2018 तक पूरी तरह निर्जन हुए 734 गांवों में 14 अंतरराष्ट्रीय सीमा से केवल पांच किलोमीटर के दायरे में थे। नेलांग, जादूंग, माणा और नीती घाटी जैसे इलाकों में वाइब्रेंट विलेज के जरिये आबादी फिर बसाने की कोशिश इसी चिंता से निकली है।

विकास के नाम पर पहाड़ों में चौड़ी सड़कें, सुरंगें, बांध, जलविद्युत परियोजनाएं और पर्यटन के लिए बेहिसाब निर्माण हुए। पर इन्होंने भीतरी पहाड़ी इलाकों की नाजुक ढलानों को भीतर से हिला दिया। पहाड़ काटने से निकला मलबा नदियों में और ढलानों पर डाला गया, पेड़ कटे और जल निकासी की वैज्ञानिक व्यवस्था नहीं हुई। नतीजा हर मानसून में भूस्खलन, बादल फटने और अचानक बाढ़ के रूप में दिखता है। 2023 में जोशीमठ में मकानों में दरारें पड़ीं और जमीन धंसी। 5 अगस्त 2025 को उत्तरकाशी के धराली में तबाही मची। इस साल जुलाई में उत्तरकाशी के नौगांव क्षेत्र में फिर बादल फटा और अगस्त में टिहरी के कोट बूढ़ाकेदार में अतिवृष्टि के बाद मलबा घरों में घुस गया। अगस्त में ही उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ के सीमावर्ती इलाकों में धराली जैसी आपदा के खतरे वाली 49 संवेदनशील जगहें चिह्नित किए जाने की खबर आई। जिस परिवार की छत के नीचे की जमीन हर बारिश में खिसकती हो, उसके लिए गांव में रहना बच्चों की जान जोखिम में डालना है। इनके लिए पलायन चुनाव नहीं, आखिरी रास्ता है।

सड़कें बनीं, पर गांव तक पहुंचने के बजाय गांव से निकलने के काम ज्यादा आ रहीं। चारधाम यात्रा में तीर्थयात्री सीधे ऋषिकेश से केदारनाथ या बदरीनाथ पहुंचकर लौट जाते हैं और रास्ते के गांव खाली के खाली रह जाते हैं। पर्यटन की कमाई बड़े होटलों और ठेकेदारों के हिस्से गई, गांव के होमस्टे और स्थानीय उत्पादों के हिस्से नहीं।

हालात बदले तो जा सकते हैं, पर इसके लिए सबसे पहले राजनीतिक इच्छाशक्ति चाहिए। फिर, यहां पहाड़ जैसा विकास मॉडल बनाना होगा जिसमें हर परियोजना से पहले ढलान की स्थिरता, जल निकासी और मलबा निस्तारण की जांच अनिवार्य हो। तीसरा, गांव में स्कूल, अस्पताल और बाजार को प्राथमिकता देनी होगी, क्योंकि रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य का सवाल हल हुए बिना कोई योजना लोगों को नहीं रोक सकती। चौथा, खतरे वाले गांवों के लिए सम्मानजनक और स्थानीय स्तर पर पुनर्वास नीति बनानी होगी, ताकि आपदा झेलने वाला परिवार मैदान की बस्तियों में खोने के बजाय अपने ही इलाके में सुरक्षित जगह बस सके। पांचवां, जानवरों से फसल की सुरक्षा, छोटे प्रसंस्करण केन्द्र और उपज की गारंटीशुदा खरीद हो, ताकि खेती फिर घाटे का सौदा न रहे। ■

राज्य 360°  जम्मू और कश्मीर

सियासी बगावत के बीच साख का संकट

हारून रेशी

फोटो: गेटी इमेजेज



3 नवंबर को बडगाम के बहिश्त-ए-ज़हरा पार्क में आगा रुहुल्लाह मेहदी ने अपने समर्थकों को संबोधित किया। इसके बाद उन्होंने नैशनल कॉनफ़्रेंस छोड़ने और संसद से इस्तीफा देने के अपने फैसले की घोषणा की

अभी कहना मुश्किल है कि नैशनल कॉनफ़्रेंस (एनसी) और संसद से 3 नवंबर को आगा रुहुल्लाह मेहदी के इस्तीफे ने पार्टी को अधिक चोट पहुंचाई है या उनके अपने राजनीतिक कॅरियर को। फिर भी, यह सार्वजनिक टकराव जम्मू-कश्मीर में पार्टी के नेतृत्व, उसकी वैचारिक प्रतिबद्धताओं और चुनावी वादे निभाने की उसकी क्षमता पर गंभीर सवाल खड़े करता है।

रुहुल्लाह का यह फैसला एक सैद्धांतिक राजनीतिक कदम है या आत्मघाती दांव, यह स्पष्ट होना बाकी है। जो बात तय है, वह यह कि उनके अलग होने से एनसी की सार्वजनिक छवि को गहरा धक्का लगा है, जिसने विश्वसनीयता और आंतरिक मतभेदों से निपटने के तौर-तरीकों पर पार्टी की दरारों को उजागर कर दिया है।

एनसी के लिए इसका राजनीतिक नुकसान काफी बड़ा है। पार्टी ने 2024 का चुनाव संवैधानिक सुरक्षा उपायों की बहाली और विशेष दर्जे, खासकर अनुच्छेद 370 की वापसी के वादे पर लड़ा था।

दो साल बीतने के बाद, रुहुल्लाह का यह आरोप जनता के बीच गहरा असर दिखा रहा है कि पार्टी ने अपने घोषणापत्र से किनारा कर लिया है। हकीकत यही है कि 2024 में भारी जन-अपेक्षाओं के बीच बड़ा जनादेश पाने के बाद, आज एनसी को अपने ही एक कद्दावर नेता द्वारा शुरू की गई तीखी आलोचना से अपनी साख बचानी पड़ रही है।

रुहुल्लाह कोई साधारण बागी नहीं हैं। बडगाम से तीन बार विधायक और श्रीनगर से सांसद रहे रुहुल्लाह दो दशकों से अधिक समय से एनसी के साथ रहे और 2024 का घोषणापत्र तैयार करने में भी शामिल थे।

उनका मुख्य तर्क यह है कि पार्टी ने अपनी प्राथमिकताओं को अनुच्छेद 370 की बहाली की लड़ाई से मोड़कर केवल राज्य का दर्जा हासिल करने तक सीमित कर दिया है, जिससे अधिक जोरदार राजनीतिक संघर्ष को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

इस बगावत ने अन्य अधूरे वादों को भी सामने ला खड़ा किया हैः एक अविवेकपूर्ण आरक्षण नीति जिससे खुली मेरिट वाले छात्रों और नौकरी के अभ्यर्थियों को नुकसान पहुंच रहा है; एक लाख नौकरियां देने के वादे सहित रोजगार सृजन में नाकामी; मुफ्त बिजली और एलपीजी; तथा राजनीतिक बंदियों को रिहा कराने और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए नाकाफी प्रयास।

सच तो यह है कि इस टकराव ने पार्टी के चुनावी वादों और उसके काम के बीच बढ़ते फासले को बेपर्दा कर दिया है।

पार्टी नेतृत्व पर गंभीर सवाल उठ रहे हैं, खास तौर पर रुहुल्लाह के साथ मतभेद दूर न कर पाने को लेकर, जिन्होंने महीनों पहले ही अपने इस्तीफे की मंशा सार्वजनिक कर दी थी। उनके अलग होने से इस धारणा को

नैशनल कॉनफ़्रेंस के सामने विश्वसनीयता का संकट है; केवल पुराने वादों को दोहराना काफी नहीं होगा

बल मिला है कि पार्टी आंतरिक आलोचना का समाधान करने की इच्छुक या सक्षम नहीं थी, जिससे वह अपनी संवैधानिक और राजनीतिक रणनीति को जनता के सामने भरोसेमंद ढंग से समझाने का अवसर चूक गई।

श्रीनगर लोकसभा सीट के मध्यावधि चुनाव और भविष्य की चुनावी लड़ाइयों को देखते हुए एनसी के सामने एक विश्वसनीय घोषणापत्र तैयार करने की बेहद कठिन चुनौती है। स्वायत्तता, पूर्ण राज्य, मुफ्त सुविधाओं और नौकरियों के पुराने वादों को केवल दोहराना काफी नहीं होगा। मतदाता अब पारदर्शिता और जवाबदेही की मांग कर रहे हैं।

इस बीच, इस मुद्दे ने एनसी के राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को एक बना-बनाया नैरेटिव थमा दिया है।

बडगाम के बहिश्त-ए-जहरा पार्क में आयोजित जनसभा में रुहुल्लाह ने अपना इस्तीफा मुहम्मद अशरफ मट्टू को सौंपा। मट्टू 2010 में एनसी शासन के दौरान पुलिस फायरिंग में मारे गए किशोर तुफैल मट्टू के पिता हैं।

आलोचकों ने तुरंत उस दौर में एनसी से रुहुल्लाह के खुद के जुड़ाव पर उंगली उठा दी। यदि 2010 के उपद्रव में कई किशोरों की मौत के लिए पार्टी जिम्मेदार थी, तो यदि वह 2010 के पीड़ितों के प्रति सचमुच संवेदनशील थे, तो उन्होंने पहले आवाज क्यों नहीं उठाई? वह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने अलग होने के प्रतीक के तौर पर मट्टू को चुनकर केवल राजनीतिक नौटंकी की है।

दूसरी ओर, एनसी ने संसद में रुहुल्लाह के कामकाज के रिकॉर्ड और विशेष दर्जे व पूर्ण राज्य की बहाली में एक सांसद के रूप में उनके योगदान पर सवाल उठाए हैं। पार्टी नेताओं का कहना है कि पार्टी ने ही उन्हें एक स्थापित संगठन, एक मान्य चुनाव चिह्न, कार्यकर्ताओं का जाल और पूरे जम्मू-कश्मीर में पहुंच दी, जिससे उन्हें बडगाम और श्रीनगर में कई चुनावी जीत हासिल करने में मदद मिली।

कुछ आलोचकों ने तो यहां तक कहा कि यह पूरा घटनाक्रम भाजपा के इशारे पर रचा गया था। इन आरोपों को तब और बल मिला जब भाजपा नेता राम माधव ने रुहुल्लाह के बाहर होने का स्वागत किया और कहा कि उन्हें जनता का समर्थन और आशीर्वाद हासिल है। एनसी ने भी आरोप लगाया है कि उनका जाना भाजपा की रणनीति का हिस्सा है। यद्यपि इसका कोई सबूत नहीं है कि इस भगवा दल ने रुहुल्लाह का इस्तीफा तय कराया था, फिर भी मुख्य क्षेत्रीय विपक्ष में फूट पड़ने का सीधा लाभ भाजपा को होता है।

रुहुल्लाह का कहना है कि वह एक वैकल्पिक राजनीतिक ताकत खड़ी करने के लिए ईमानदार और समर्पित लोगों की तलाश में हैं। क्या वह इस मंशा को एक व्यावहारिक राजनीतिक आंदोलन में बदल पाएंगे, यह देखना अभी बाकी है। अगर सचमुच उनका उद्देश्य कश्मीर की जनता के अधिकारों के लिए लड़ना है, तो आगे की राह अनिश्चित है। सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह कितना प्रभावी संगठन खड़ा करते हैं, अपनी सोच को कितनी स्पष्टता से रखते हैं और अपनी जन-अपील का कितना विस्तार करते हैं।

अब केवल समय ही बताएगा कि रुहुल्लाह का दांव रंग लाएगा या फिर उनका हाल भी गुलाम नबी आजाद जैसा होगा, जिन्होंने दशकों के जुड़ाव के बाद अगस्त 2022 में कांग्रेस छोड़ी थी और बाद में उनका राजनीतिक आधार बिखरता चला गया। ■

नासूर का आधा-अधूरा इलाज

अग्निपथ योजना की बुनियादी गलतियों को सुधारने के लिए महज दो साल का सेवा विस्तार नाकाफी

रश्मि सहगल

भारतीय सेना के सैन्य पुलिस कोर (सीएमपी) में 24 साल सेवा करने के बाद उत्तर प्रदेश के चरकुला गांव में सेवानिवृत्त जीवन बिता रहे विजय कुमार खासे निराश हैं। तीन पीढ़ियों से फौजी परंपरा वाले परिवार के विजय के दोनों बेटे सेना में शामिल हुए। बड़ा बेटा 24 साल के लिए नियमित जवान के रूप में भर्ती हुआ; जबकि छोटा बेटा, आदेश कुमार, चार साल के लिए अग्निवीर बना। प्रशिक्षण के बाद आदेश की तैनाती अरुणाचल प्रदेश में हुई। 24 मार्च 2026 को चीनी और भारतीय सेना के बीच हुई कथित गोलीबारी में उसकी जान चली गई।

कुमार के मन में अपने बेटे की मौत से जुड़े कई सवाल हैं। उन्होंने कहा कि 'हमसे कहा गया कि भारत-चीन के सैनिकों में कोई गोलीबारी नहीं हुई। ऐसा है, तो मेरा बेटा घायल कैसे हुआ? मुझे उन परिस्थितियों को लेकर गहरा संदेह है जिनमें उसकी जान गई। वह भी छुट्टी के दिन, जब उसे अपने भाई की शादी के लिए घर आना था। जब उसका पार्थिव शरीर गांव लाया गया, तो सरकार की ओर से सांत्वना देने एक भी नुमाइंदा नहीं पहुंचा।' वह कहते हैं, 'हमें एक अग्निवीर के तौर पर उसका बीमा और बाकी फंड दिया गया और बताया गया कि कोर्ट ऑफ इंक्वायरी के बाद बाकी रकम मिलेगी। नियमित सैनिक को शहीद का दर्जा मिलता है और उसे पूरे सम्मान के साथ अंतिम विदाई दी जाती है। अग्निवीरों के साथ ऐसा नहीं होता। आखिर सेना में उनकी क्या हैसियत है?'

मथुरा जिले में सोहन सिंह और उनकी पत्नी चंद्रावती अपने दो बेटों के साथ रहते हैं। बड़ा बेटा स्थायी कमीशन वाला नियमित जवान है, जबकि छोटा अग्निवीर। चंद्रावती कहती हैं, 'रोजगार के मौके हैं ही कहां? नौजवानों को जो मिलता है, उसी में हाथ-पांव मारते हैं। बड़े बेटे के लिए कई रिश्ते आए और उसकी शादी हो गई, लेकिन छोटे बेटे के लिए कोई रिश्ता नहीं आया। कोई बेरोजगार को दामाद नहीं बनाना चाहता।'

मुठभेड़ों या हादसों में जान गंवाने वाले अग्निवीर बेटों के लिए कम-से-कम 20 परिवार 'शहीद' दर्जे की मांग कर चुके हैं। जनवरी 2024 में लुधियाना के चरणजीत सिंह ने जम्मू-कश्मीर के राजौरी में एलओसी के पास बारूदी सुरंग विस्फोट में अपने 23 वर्षीय बेटे अजय को खो दिया था। मजदूरी करने वाले सिंह ने कहा, 'मेरे बेटे की शहादत को भी वही मान-सम्मान मिले जो नियमित सैनिकों को मिलता है।' हालांकि उन्हें बीमे के 40 लाख और सेना से 48 लाख रुपये मिले, लेकिन उनका मानना है कि परिवार को नियमित सैनिकों की तरह पेंशन और चिकित्सा सुविधाएं मिलनी चाहिए। परिवार इस फर्क को सशस्त्र बलों की मर्यादा के खिलाफ मानते हैं। चरणजीत की बहन ने सवाल किया, 'क्या मेरा भाई कोई कमतर इंसान था?'

रक्षा पत्रिका 'फोर्स' के संपादक और सैन्य विशेषज्ञ प्रवीण साहनी बताते हैं, 'चीन और पाकिस्तान के साथ हमारी लंबी सीमा है। हम चीन के साथ अपनी सीमा 3,488 किलोमीटर बताते हैं, लेकिन चीनियों का दावा है कि यह महज 500 किलोमीटर है। अकेले अरुणाचल प्रदेश में हमारी सीमा 3,000 किलोमीटर से अधिक लंबी है। कई मोर्चों पर चीनी और भारतीय सेनाओं के बीच आमना-सामना हुआ और लगातार तनाव बना हुआ है। सरकार भले इनकार करे, लेकिन भारत-तिब्बत सीमा पुलिस के महानिदेशक शत्रुजीत कपूर की हालिया टिप्पणियां बताती हैं कि झड़पें हो रही हैं।'

साहनी कहते हैंः '23 अक्तूबर 2021 को चीनी सरकार ने एक सीमा कानून पारित कर क्षेत्रीय विवादों को राष्ट्रीय संप्रभुता का मामला घोषित कर दिया (1 जनवरी 2022 से यह कानून अमल में आ गया)। वे अपनी 'सलामी स्लाइसिंग' की रणनीति पर लगातार बढ़ रहे हैं। हमें हर इंच जमीन की हिफाजत करनी होगी। इन टकरावों से आंखें मूंदने से चीन का हौसला बढ़ेगा।'

जब सेना को जवानों की जरूरत हो लेकिन सरकार खर्चों में कटौती करना चाहे, तो वह क्या करती है? वह वही करती है जिसे साहनी 'बेतुकी योजना' कहते हैं, जहां सैनिकों की दो अलग श्रेणियां 'एक जैसा काम' करती हैं लेकिन उनके साथ बर्ताव बिल्कुल अलग होता है। वह कहते हैं, 'यह सीधे तौर पर सैन्य तालमेल और रेजिमेंटल जुड़ाव को चोट पहुंचाता है। कमान ढांचा लड़खड़ाता है। जब कोई योजना सैनिकों के बीच ही भेदभाव पैदा करे, तो कोई अग्निवीर अपनी रेजिमेंट के लिए जान क्यों दे?'

सेवा शर्तों में यह भारी असमानता उन प्रमुख कारणों में से थी, जिनके चलते सैन्य विशेषज्ञों ने 2022 में अग्निपथ योजना का पुरजोर विरोध किया था। चार साल बाद, जब नवंबर 2026 में पहले बैच का कार्यकाल पूरा होने जा रहा है, सरकार ने इसमें फेरबदल की घोषणा की। बाहर होने वाले बाकी 75 प्रतिशत अग्निवीरों को अब दो साल का सेवा-विस्तार मिलेगा।

इसपर कारगिल युद्ध के नायक और परमवीर चक्र विजेता कैप्टन योगेंद्र सिंह यादव ने सोशल मीडिया पर लिखाः 'कार्यकाल बढ़ाए जाने के बाद क्या अग्निवीरों को पदोन्नति और वेतन-वृद्धि मिलेगी? अगर वे खेलों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं, तो क्या उन्हें और दो साल प्रशिक्षण की अनुमति होगी? अग्निपथ योजना केवल सेना में क्यों लागू की गई और अन्य सशस्त्र बलों (सीआरपीएफ, बीएसएफ और आईटीबीपी) में क्यों नहीं? सशस्त्र बल देश की रक्षा की अंतिम पंक्ति हैं, फिर भी सरकार ने इसके साथ प्रयोग का जोखिम उठाया। आधुनिक युद्ध तकनीकी और बहु-क्षेत्रीय स्वरूप ले चुका है। जब अन्य सुरक्षा बलों में इंस्पेक्टर, सूबेदार और हवलदार स्तर पर सीधी भर्ती खुली है, तो इस योजना के तहत योग्य बीटेक और एमटेक नौजवानों को क्यों नहीं लिया जाता?'

पूर्व थलसेना प्रमुख वी.एन. मलिक का भी मानना है कि अग्निपथ ने युवाओं को सेना के बजाय अर्धसैनिक बलों की ओर धकेला है। उनका कहना है कि सेना में यह दोहरा मापदंड नहीं चल सकता। उन्होंने आगाह किया कि इन जवानों को प्रशिक्षित कर सेना में पूरी तरह समाहित नहीं किया तो 'बड़ा संकट खड़ा हो जाएगा।'

कई सैन्य विश्लेषकों का तर्क है कि संशोधित योजना से भी बुनियादी कमियां दूर नहीं हुई हैं। सेवा में निरंतरता का अभाव सामरिक मुस्तैदी और युद्धक अनुभव को कमजोर करेगा, खासकर तब जब नियमित सैनिकों की स्थायी भर्ती बंद है। सेना की मौजूदा संख्या करीब 12.48 लाख है, जहां सेना 1 -1.8 लाख जवानों की कमी का सामना कर रही है। यह कमी जूनियर कमीशंड अधिकारियों (जेसीओ) और गैर-कमीशंड अधिकारियों (एनसीओ) के स्तर पर सबसे ज्यादा है (लगभग 92,410 पद रिक्त)। अधिकारियों के स्तर पर करीब 16 प्रतिशत की कमी है, जिसमें कैप्टन और मेजर स्तर के हजारों पद खाली हैं।

भारतीय सेना किसी तदर्थ रोजगार योजना की प्रयोगशाला नहीं। लेफ्टिनेंट जनरल जमीर उद्दीन शाह (सेवानिवृत्त) कहते हैं- 'मैंने अपनी रेजिमेंट में 20 साल गुजारे। मैं हर जवान को जानता था- उसका गांव कौन सा है, पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या है, यहां तक कि उसके बच्चों के नाम क्या हैं। यदि हर साल एक-तिहाई जवान बदलते रहेंगे, तो रेजिमेंट की पूरी पहचान और भावनात्मक ताना-बाना कमजोर पड़ जाएगा। रेजिमेंटल व्यवस्था एक ही इलाके, एक जैसी बोली और समान सामाजिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को एक सूत्र में बांधती है। निरंतर होने वाली अदला-बदली इस बुनियाद को हिला देगी।' पूर्व नौसेना प्रमुख एडमिरल अरुण प्रकाश भी इतने ही मुखर हैंः 'उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं के कभी भी सुलग उठने की आशंका को देखते हुए, युद्धक क्षमता को प्रभावित करने वाला कोई भी ढांचागत बदलाव फूंक-फूंककर और धीरे-धीरे किया जाना चाहिए था।'

रियर एडमिरल सुधीर पिल्लई (सेवानिवृत्त) सहित कई रक्षा रणनीतिकारों का मानना है कि आधुनिक युद्ध अब कृत्रिम मेधा (एआई), स्वायत्त प्रणालियों और नेटवर्क एकीकरण से संचालित बहु-क्षेत्रीय डिजिटल संघर्ष में तब्दील हो चुका है। मशीन जितनी जटिल होगी, उसके संचालक को उतना ही अनुभवी होना पड़ेगा। सैन्य क्षमता इसपर निर्भर करती है कि जवान कुशल ऑपरेटर और तकनीकी निरीक्षक बनें- वे मैदान में ऐसी तकनीकी मदद दे सकें जो जीवन और मृत्यु के बीच का फर्क तय करती है।

एक और गंभीर सवाल है कि सेना के बाद अग्निवीरों का क्या होगा। दो साल के सेवा-विस्तार के बाद भी, 26-27 की उम्र में उनके पास ऐसा कौन सा हुनर होगा जिससे निजी क्षेत्र में नौकरी मिल सके? केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बलों (सीएपीएफ) और असम राइफल्स में पूर्व अग्निवीरों के लिए 50 प्रतिशत पद आरक्षित करने का फैसला अलग पेचीदगियां खड़ी करता है, क्योंकि दोनों के काम के तौर-तरीकों और ड्यूटी के घंटों में भारी अंतर है। योजना शुरू होते वक्त कई राज्य सरकारों ने नौकरियों के वादे किए, लेकिन रोजगार सृजन की लाचारी के चलते वह उत्साह ठंडा पड़ चुका है।

सरकार अपने इस ताजा बचाव को चाहे जो रंग दे, लेकिन यह रणनीतिक कदम साफ तौर पर प्रधानमंत्री मोदी के निर्देश पर उठाया गया। वह जानते हैं कि यह योजना जमीन पर कितनी अलोकप्रिय है। उत्तराखंड, हिमाचल, उत्तर प्रदेश और पंजाब के आगामी विधानसभा चुनावों को देखते हुए उन्हें विपक्ष के बढ़ते दबाव का मुकाबला करना है। लेकिन यह सियासी सुविधा सेना की युद्धक क्षमता की कीमत पर जुटाई जा रही है। एक अपरीक्षित भर्ती प्रणाली को बिना सोचे-समझे थोपकर देश की सुरक्षा को दांव पर लगा दिया गया है। ■





अरुणाचल प्रदेश सीमा पर गोलीबारी में मारे गए आदेश (इनसेट) जैसे अग्निवीरों को भी नियमित सैनिकों के बराबर ही सम्मान मिलना चाहिए

भारत के रक्षा बल किसी प्रायोगिक नौकरी योजना के लिए प्रयोगशाला नहीं हैं

संडे नवजीवन
रविवार, 15 नवंबर, 2026 Iwww.navjivanindia.com

इसराइल, नेतन्याहू के साथ या उनके बिना



फोटो: गेटी इमेजेज

10 नवंबर को नेसेट में प्रवेश करने से पहले यशार पार्टी के नेता गादी आइजनकोट

अशोक स्वैन

लगभग दो दशकों तक इसराइली राजनीति पर हावी रहने के बाद बेंजामिन नेतन्याहू के सत्ता से बाहर होने की संभावनाओं ने राजनीतिक बदलाव की भारी उम्मीदें जगा दी हैं। राष्ट्रपति इसहाक हर्जोग द्वारा पूर्व सेना प्रमुख गादी आइजनकोट को सरकार बनाने की जिम्मेदारी सौंपने से इसराइल नेतन्याहू-मुक्त दौर के और करीब पहुंच गया है। फिर भी, सबसे बड़ा सवाल यह नहीं है कि नेतन्याहू आखिरकार रुखसत हो रहे हैं या नहीं। असली सवाल यह है कि क्या उनका जाना कब्जे में पिस रहे फलस्तीनियों के प्रति इसराइल के बर्ताव, उसके क्षेत्रीय सैन्य दुस्साहस या अमेरिकी मदद पर उसकी निर्भरता में कोई बुनियादी तब्दीली लाएगा।

बुनियादी बदलाव की उम्मीद लगाए बैठे लोगों को इसका जवाब निराश कर सकता है। आइजनकोट शायद नेतन्याहू की भड़काऊ बयानबाजी की जगह राजनयिक नफासत और संस्थागत गरिमा को आगे रखें। वह अतिवादी यहूदी कब्जाधारियों पर कुछ नकेल कस सकते हैं और गाजा में सीमित मानवीय पुनर्निर्माण की इजाजत भी दे सकते हैं। लेकिन अवैध कब्जा, बस्तियों का लगातार विस्तार, फिलस्तीनी संप्रभुता को नकारने की जिद और सैन्य ताकत पर अंधाधुंध निर्भरता खत्म होने के कोई आसार नहीं हैं। इसराइल अपनी मूल नीतियों में बदलाव किए बिना दुनिया के सामने एक अधिक स्वीकार्य और सौम्य चेहरा पेश कर सकता है।

27 अक्तूबर के चुनावों ने एक त्रिशंकु नेसेट (संसद) सामने रखी। नेतन्याहू के खेमे को 53 सीटें मिलीं, आइजनकोट के चार दलों के विपक्षी गठबंधन को 48 और अरब-नेतृत्व वाली पार्टियों ने ऐतिहासिक रूप से 19 सीटें हासिल कीं। हालांकि 67 सांसदों ने प्रधानमंत्री पद के लिए आइजनकोट के नाम की सिफारिश की, लेकिन ये सिफारिशें स्वतः ही गठबंधन सरकार में तब्दील नहीं हो जातीं। सरकार बनाने के लिए उनके पास 28 दिन का समय है, जिसे जरूरत पड़ने पर 14 दिन बढ़ाया जा सकता है।

आइजनकोट का सैन्य अतीत फिलस्तीनियों के प्रति इसराइली नीति में किसी बुनियादी उलटफेर की उम्मीद की बेहद कम गुंजाइश छोड़ता है। वर्ष 2015 से 2019 के बीच सेना प्रमुख के रूप में वह बदनाम 'दाहिया सिद्धांत' के मुख्य पैरोकार बने, जो दुश्मन के नियंत्रण वाले क्षेत्रों और नागरिक बुनियादी ढांचे पर अनियंत्रित और भारी सैन्य बल के इस्तेमाल की वकालत करता है। उनकी पहचान क्रूर सैन्य ताकत के इस्तेमाल पर टिकी रही है।

इससे भी अधिक आंखें खोलने वाली बात यह है कि आइजनकोट निकट भविष्य में फिलस्तीन को स्वतंत्र राष्ट्र का दर्जा देने से साफ इनकार करते हैं। गाजा के लिए उनकी प्रस्तावित रणनीति हमास को किसी अन्य प्रशासनिक तंत्र से बदलने की है, जिसमें फिलस्तीनी प्राधिकरण या अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था शामिल हो सकती है, जबकि सुरक्षा पर पूरा नियंत्रण इसराइल का ही रहेगा। वह आंशिक पुनर्निर्माण और मानवीय राहत की छूट भले दे दें, लेकिन फिलस्तीनियों को उनके आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं होगा।

नेतन्याहू ने बस्तियों के आक्रामक विस्तार, सामूहिक दंड और अतिवादी कब्जाधारियों को खुली छूट देकर जमीन पर कब्जे का खेल खेला। आइजनकोट इन नीतियों के बुनियादी तर्क को चुनौती दिए बिना इन्हें कुछ धीमा कर सकते हैं। उन्होंने बस्तियों की सशस्त्र मिलिशिया के खिलाफ कड़ी कार्रवाई, कानून व्यवस्था की बहाली और अवैध चौकियों पर लगाम लगाने का वादा किया है। ऐसे कदम फिलस्तीनियों की जान बचाने में जरूर मदद कर सकते हैं, लेकिन अवैध कब्जे को बनाए रखते हुए और संप्रभुता से इनकार करते हुए केवल हिंसक कब्जाधारियों को नियंत्रित करना, बस्तियों के औपनिवेशिक ढांचे को समाप्त करना नहीं बल्कि उसे कानूनी अमलीजामा पहनाना भर होगा।

खतरा यह है कि दुनिया का ध्यान फिलस्तीनियों की बेदखली से हटकर इसराइल की तथाकथित राजनीतिक उदारता पर टिक जाएगा। मंत्रियों की कम भड़काऊ बयानबाजी, कड़े नियंत्रण में दी जाने वाली मानवीय राहत और नए सिरे से शुरू होने वाली राजनयिक बातचीत प्रगति का एक भ्रम खड़ा कर सकती है, जबकि जमीन पर कब्जे और रंगभेदी नीतियां बदस्तूर जारी रहेंगी। फिलस्तीनियों के लिए असली कसौटी यह नहीं है कि इसराइल का प्रधानमंत्री कितनी नपी-तुली भाषा बोलता है, बल्कि यह है कि क्या कब्जा खत्म होता है, विस्थापित लोग अपने घरों को लौट पाते हैं, बस्तियों का फैलाव रुकता है और उन्हें समान राजनीतिक अधिकार मिल पाते हैं।

ईरान को परमाणु हथियार हासिल करने से रोकने और इसराइल की परमाणु श्रेष्ठता बनाए रखने के मामले में आइजनकोट भी नेतन्याहू जितने ही अड़ियल हैं। उनके कथित प्रस्तावों में ईरानी परमाणु प्रतिष्ठानों के इर्द-गिर्द अमेरिका द्वारा लागू किए जाने वाले 'नो-गो जोन' और ईरान की मिसाइल क्षमताओं के खिलाफ व्यापक खुफिया अभियान शामिल हैं। ये प्रस्ताव किसी रणनीतिक संयम के बजाय केवल तौर-तरीकों का बदलाव भर हैं। आइजनकोट नेतन्याहू के नाटकीय टकराव के बजाय अमेरिका के साथ समन्वित दबाव, खुफिया अभियानों और चुनिंदा सैन्य हमलों को प्राथमिकता दे सकते हैं। लेकिन बुनियादी सोच वही रहेगी कि इसराइल के पास सैन्य ताकत के दम पर पूरे क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्था तय करने का विशेषाधिकार है। लेबनान और सीरिया में भी ऐसा ही ढर्रा जारी रहने की संभावना है।

आइजनकोट सीमित सैन्य वापसी पर बातचीत कर सकते हैं, यूरोपीय सरकारों के साथ तालमेल बढ़ा सकते हैं लेकिन वह इस्राइल की एकतरफा सैन्य कार्रवाई और खुद तय किए गए बफर जोन के अधिकार को नहीं छोड़ेंगे। इसलिए नेतृत्व परिवर्तन इसराइली सैन्य दबदबे को अधिक अनुमानित और राजनयिक रूप से प्रबंधनीय तो बना सकता है, लेकिन यह क्षेत्र को स्थायी शांति की ओर नहीं ले जाएगा।

सबसे बड़ा बदलाव अंतरराष्ट्रीय मोर्चे पर देखने को मिल सकता है। पश्चिमी जनमानस के एक बड़े हिस्से में नेतन्याहू राजनीतिक रूप से अछूत बन चुके हैं। यूरोपीय सरकारों से उनके सीधे टकराव और अमेरिकी राजनीति में उनके दलगत झुकाव ने इसराइल की कूटनीतिक साख को भारी बट्टा लगाया है। आइजनकोट वाशिंगटन और यूरोपीय राजधानियों को अपनी इसराइल नीतियों के आंतरिक अंतर्विरोधों का सामना किए बिना रिश्ते सामान्य करने का एक सुनहरा बहाना मुहैया कराते हैं।

वह द्विदलीय अमेरिकी रिश्तों को दोबारा संवारने का प्रयास करेंगे, जिसमें खुफिया सहयोग, सैन्य तकनीक और इसराइल की रणनीतिक उपयोगिता पर जोर होगा। नए सिरे से बातचीत, सीमित मानवीय रियायतों और एक कम आक्रामक प्रशासन को देखकर यूरोपीय देशों के साथ रिश्तों का खिंचाव दूर हो सकता है। यह एक असहज करने वाला विरोधाभास पैदा करेगाः नेतन्याहू का हटना ठीक ऐसे समय अंतरराष्ट्रीय दबाव को हल्का कर देगा जब इसराइली

कारनामों की सख्त जांच सबसे जरूरी है। पश्चिमी सरकारें आइजनकोट को इस बात के सुबूत के तौर पर पेश कर सकती हैं कि इसराइली लोकतंत्र खुद को सुधारने में सक्षम है, और इस आड़ में फिलस्तीनियों के राजनीतिक अधिकारों की निरंतर अनदेखी को दबा दिया जाएगा। प्रतिबंधों की मांग कमजोर पड़ेगी, कूटनीतिक अलगाव कम होगा और युद्ध अपराधों की जवाबदेही की मुहिम की धार कुंद पड़ जाएगी।

अमेरिका निश्चित रूप से इसराइल का मुख्य रणनीतिक संरक्षक बना रहेगा। सैन्य सहायता, खुफिया सहयोग और राजनयिक ढाल नेतन्याहू के जाने के बाद भी बरकरार रहेगी। जो बदलेगा, वह सिर्फ ट्रंप प्रशासन के लिए इस समर्थन की घरेलू राजनीतिक लागत होगी। आइजनकोट की सबसे बड़ी अंतरराष्ट्रीय कामयाबी यही होगी कि वह इसराइल को अपनी नीतियों में बुनियादी बदलाव किए बिना पश्चिमी देशों का भरोसा दोबारा दिला दें।

भारत के लिए नेतन्याहू का जाना द्विपक्षीय संबंधों में कोई बड़ा व्यवधान पैदा नहीं करेगा। नरेन्द्र मोदी और नेतन्याहू के रिश्तों ने एक विशिष्ट नस्ली-राजनीतिक आयाम हासिल कर लिया था, जो हिन्दू राष्ट्रवाद और जायोनी राष्ट्रवाद के बीच की वैचारिक समानताओं को दर्शाता था। उनकी इस व्यक्तिगत साझेदारी ने पारंपरिक राजनयिक सहयोग से परे जाकर एक साझा मुस्लिम-विरोधी राजनीतिक विमर्श को आगे बढ़ाया। आइजनकोट के दौर में भारत-इसराइल

संबंध खुले तौर पर वैचारिक और राजनीतिक दिखने के बजाय पारंपरिक राजनयिक, सुरक्षा और आर्थिक हितों पर अधिक मजबूती से टिक सकते हैं। हथियारों की बिक्री, खुफिया सूचनाओं का आदान-प्रदान और साइबर निगरानी साझेदारी के स्तंभ बने रहेंगे। भारत-इसराइल सहयोग का मूल ढांचा काफी हद तक अछूता रहेगा, भले ही इसका सार्वजनिक प्रदर्शन कम नस्ली-राजनीतिक होकर पूरी तरह सैन्य और खुफिया तालमेल हो जाए।

नेतन्याहू का निजी भविष्य एक और बड़ी अनिश्चितता पैदा करता है। सत्ता से बाहर होने पर वह उस प्रभाव, अधिकार और राजनीतिक संरक्षण से वंचित हो जाएंगे जिसने उनके अहंकार और सियासी करियर को बचाए रखा था। उन पर लंबे समय से चल रहा भ्रष्टाचार का मुकदमा आगे बढ़ेगा, जबकि 7 अक्तूबर की सुरक्षा विफलताओं के लिए उनकी जिम्मेदारी पर सवाल और तीखे होंगे। कुर्सी जाने से जवाबदेही के माहौल को अपने पक्ष में मोड़ने की उनकी क्षमता घट जाएगी। फिर भी, नेतन्याहू का परिदृश्य से गायब हो जाना मुश्किल है। एक कमजोर गठबंधन उन्हें वापसी का मौका दे सकता है। वह राजनीतिक सौदेबाजी के जरिये प्रभाव बनाए रखने की कोशिश कर सकते हैं। लिकुड पार्टी उन्हें हमेशा के लिए छोड़ती है या नहीं, यह इसपर निर्भर करेगा कि वह उन्हें चुनावी रूप से कितना उपयोगी मानती है।

नेतन्याहू के जाने से एक व्यक्ति के सियासी दबदबे का दौर तो खत्म हो सकता है, लेकिन 'नेतन्याहूवाद' का खात्मा नहीं होगा। नेतन्याहू इस क्षेत्र में इसराइल की विध्वंसक नीतियों और कब्जे वाले इलाकों में नरसंहारी अभियानों का अंतरराष्ट्रीय प्रतीक बन चुके हैं। उन्हें हटाने से दुनिया का गुस्सा थोड़ा शांत हो सकता है और पश्चिमी सरकारों को अपने पुराने ढर्रे पर लौटने का बहाना मिल सकता है। लेकिन फिलस्तीनियों के लिए, दमन के ढांचे को तोड़े बिना केवल प्रधानमंत्री का चेहरा बदलना उस निरंतर अन्याय के नए प्रशासक से ज्यादा कुछ नहीं। इसराइल शायद नेतन्याहू के शासन के अंत के करीब पहुंच रहा हो, लेकिन क्या वह नेतन्याहू की नीतियों के अंत के करीब है- यह एक बिल्कुल अलग सवाल है। ■

इसराइल में नेतन्याहू का दौर खत्म होने के करीब हो सकता है, लेकिन 'नेतन्याहूवाद' के खात्मा की उम्मीद नहीं

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

मध्यावधि झटके के बाद ट्रंपवाद

आशीष रॉय

नरेन्द्र मोदी सरकार के लिए यह एक बेहद असहज करने वाला संयोग था कि अमेरिकी दीवानी अदालत ने इसी हफ्ते भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल और बाह्य खुफिया एजेंसी रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रॉ) के पूर्व प्रमुख सामंत गोयल को समन जारी कर दिए।

भारतीय विदेश मंत्रालय ने स्वाभाविक ही मामले को 'मनगढ़ंत और दुर्भावनापूर्ण' आरोपों पर आधारित एक 'बेबुनियाद मुकदमा' करार दिया। यह मामला 2024 में न्यूयॉर्क में भारत-विरोधी खालिस्तानी अलगाववादी गुरपतवंत सिंह पन्नू की हत्या की कथित साजिश से जुड़ा है। फरवरी 2026 में, 54 वर्षीय भारतीय नागरिक निखिल गुप्ता ने सुपारी देकर हत्या कराने की साजिश में अपना जुर्म कबूल कर लिया था और अभी वह सजा सुनाए जाने का इंतजार कर रहा है।

सरकारी वकीलों ने आरोप लगाया था कि गुप्ता को इस साजिश को अंजाम देने के लिए भारत सरकार के कैबिनेट सचिवालय (जिसके तहत रॉ काम करती है) में तैनात विकास यादव नाम के एक अधिकारी ने आदेश दिया था। इस व्यक्ति पर आरोप तय होने की आशंका पहले से थी, लेकिन डोभाल और गोयल को समन भेजना न केवल कानूनी विवाद को गंभीर मोड़ देना है बल्कि वाशिंगटन के कुछ कूटनीतिक हलकों में इसके समय को भारत के साथ धीमी गति से चल रही व्यापार वार्ताओं के बीच अमेरिका के एक नए दबाव-हथकंडे के रूप में भी देखा जा रहा है।

इस घटनाक्रम से ठीक पहले अमेरिकी मध्यावधि चुनावों को लेकर दुनिया भर में भारी दिलचस्पी दिखी। आखिरकार, चीन के हाथों तेजी से अपना प्रभुत्व गंवाने के बावजूद अमेरिका अब भी दुनिया की अग्रणी महाशक्ति है। यह दिलचस्पी इस तथ्य से और बढ़ गई थी कि राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने पिछले दो वर्षों में अपने किसी भी पूर्ववर्ती की तुलना में दुनिया भर में कहीं अधिक उथल-पुथल मचाई थी। इसके नतीजे बहुतों के लिए मायने रखते थे। अटकलें तेज थीं: क्या ये चुनाव उनके पर कतर देंगे? क्या घरेलू मोर्चे पर लगने वाली लगाम उन्हें विदेशी मामलों में और अधिक खतरनाक और अनियंत्रित बना देगी?

आइए इसकी शुरुआत इस बात से करें कि इस नतीजे के भारत के लिए क्या मायने हो सकते हैं। पिछले डेढ़ साल से अधिक समय से नई दिल्ली कमरतोड़ सीमा शुल्क, अमेरिका से आयात बढ़ाने की मांगों और रूस से कच्चा तेल खरीदना जारी रखने पर भारतीय निर्यातों पर 100 प्रतिशत टैरिफ लगाने की धमकियों से लगातार परेशान रही है।

ट्रंप के इस आक्रामक रवैये को मोदी सरकार की कमजोरी के रूप में देखा जाता रहा है; एक ऐसी लाचारी जो पिछली किसी भारतीय सरकार ने नहीं दिखाई। सीधे शब्दों में कहें तो दादागीरी का डटकर मुकाबला करने के बजाय मोदी बेहद दयनीय ढंग से घुटने टेकते नजर आए।

यह क्यों हुआ, इसे छोड़ इसकी पड़ताल करें कि मध्यावधि चुनावों में ट्रंप को मिली करारी शिकस्त के बाद क्या यह समीकरण बदल सकता है। पूरे एक महीने तक रैली-दर-रैली वह कहते रहे, 'यही मानिए कि यह चुनाव मेरा अपना चुनाव है।' और अमेरिकी मतदाताओं ने बिल्कुल वैसा ही किया; ट्रंप को वह झटका दिया जिसके वह हकदार थे।

कोलंबिया विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री जेफ्री सैक्स ने 'द वायर' के करण थापर से कहाः 'भारत और दुनिया भर के अपने मित्रों से मैं यही कहूंगा कि वे सख्ती से सौदेबाजी करें। इस व्यक्ति के पास न तो कोई कानूनी अधिकार बचा है और न ही कोई कदम उठाने के लिए कोई राजनीतिक समर्थन... अपनी जमीन पर डटे रहिए। अच्छा सौदा हासिल कीजिए। बिल्कुल मत झुकिए... अमेरिकी जनता टैरिफ नहीं चाहती। वे प्रतिबंध नहीं चाहते।'

ये बिल्कुल वही चेतावनियां हैं जिन्हें फरवरी 2025 से हमने लगातार रेखांकित किया है, जब ट्रंप ने मोदी को एक तरह का अमित्रतापूर्ण कूटनीतिक संदेश भेजा था कि भारत को अमेरिकी वस्तुओं और सेवाओं की खरीद में कई गुना इजाफा करना चाहिए। भारतीय पक्ष ने प्रत्यक्ष तौर पर इसे स्वीकार कर लिया। अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने भारत सहित दुनिया भर के देशों पर टैरिफ थोपने वाले उनके अप्रैल 2025 के कार्यकारी आदेश को निरस्त कर दिया। अन्य रास्तों से शुल्क दोबारा लगाने की उनकी नई कोशिशों के साथ भी शीर्ष अदालत संभवतः यही करेगी। निचली अदालतें पहले ही ऐसा कर चुकी हैं।

इन परिस्थितियों में, अगर मोदी कमजोर हो चुके ट्रंप के सामने भी दबते रहते हैं, तो ये चिंताएं गहरी होंगी कि इस लाचारी के पीछे कुछ ऐसा है जो दिखाई देने वाली हकीकत से कहीं परे है। ट्रंप का क्या मतलब था जब उन्होंने अक्टूबर 2025 में कहा था कि वह 'मोदी का करियर तबाह कर सकते हैं'? मोदी कैबिनेट के मंत्री हरदीप पुरी और न्यूयॉर्क के दिवंगत सजायाफ्ता बाल यौन-अपराधी जेफ्री एपस्टीन की निजी मुलाकात की तस्वीर पिछले महीने अचानक कैसे सामने आ गई? क्या एपस्टीन ने जनवरी 2017 में दिल्ली का दौरा किया था? उससे कौन मिला था? ऐसे तीखे सवाल वाशिंगटन के सत्ता के गलियारों में तैरते रहे हैं।

ब्लूमबर्ग ने शीर्षक दियाः 'डेमोक्रेट्स की भारी जीत के बाद भारत को व्यापार में कुछ राहत, लेकिन नए जोखिम भी।' वाशिंगटन के विशेषज्ञों का मानना है कि मध्यावधि चुनावों के नतीजे ट्रंप को भारत के साथ जल्द व्यापार समझौते के लिए और अधिक दबाव बनाने को प्रेरित कर सकते हैं। उन्हें यह भी लगता है कि भारत के पास अब समझौते के बारीक बिंदुओं पर मोलभाव करने की कुछ गुंजाइश है, जिसमें महीनों से बेहद धीमी प्रगति दिख रही थी।

विपक्षी डेमोक्रेटिक पार्टी के बड़े बहुमत के साथ-जब नवनिर्वाचित सांसद जनवरी में प्रतिनिधि सभा और सीनेट में प्रवेश करेंगे- अमेरिकी कानूनों के तहत कांग्रेस को राष्ट्रपति के कार्यकारी आदेशों को संशोधित या रद्द करने का अधिकार मिल जाएगा; लेकिन इसे बदले में व्हाइट हाउस की वीटो से रोका जा सकता है।

ऐसी स्थिति में, ट्रंप के लिए मनमाने ढंग से टैरिफ दरों को बढ़ाना अधिक कठिन होगा, जो भारत के परिधान और कपड़ा, रत्न और आभूषण क्षेत्रों के लिए एक राहत हो सकती है। साथ ही, नई दिल्ली के लिए यह समझदारी होगी कि वह अपने कूटनीतिक संपर्कों को केवल अमेरिकी प्रशासन तक सीमित न रखकर कांग्रेस और उन अमेरिकी राज्यों तक विस्तारित करे जिन्हें भारतीय निर्यात से लाभ मिलता है। जहां डेमोक्रेट्स और ट्रंप के रिपब्लिकन पूरी तरह एकजुट हो सकते हैं, वह है अमेरिकी कृषि और डेयरी उत्पादों को भारतीय बाजार में धकेलने का दबाव-जो भारतीय किसानों के लिए एक तरह से मौत का फरमान होगा। जानकार हलकों का मानना है कि इस चुनावी झटके के बाद भी ट्रंप के संरक्षणवादी रुख में नरमी की संभावना नहीं है।

फिर उस नए अमेरिकी कानून का मामला भी है जिसे ट्रंप ने मंजूरी दी थी, जिसमें रूसी कच्चे तेल के आयात पर भारत पर 100 प्रतिशत टैरिफ लगाने की धमकी दी गई है। रॉयटर्स की पिछले महीने की रिपोर्ट के अनुसार, इसका क्रियान्वयन-ट्रंप द्वारा दिए गए स्थगन के अलावा-एक अमेरिकी जांच से जुड़ा है जो यह आकलन कर रही है कि विभिन्न देशों में अतिरिक्त उत्पादन अमेरिकी व्यवसायों को नुकसान पहुंचा रहा है या नहीं।

कहने की जरूरत नहीं कि अमेरिका भारत का सबसे बड़ा निर्यात बाजार है। वर्ष 2025 में अमेरिका ने 103.82 अरब डॉलर मूल्य का भारतीय माल खपाया, जबकि भारत में उसका निर्यात 45.6 अरब डॉलर का रहा। सेवाओं के मामले में ये आंकड़े क्रमशः 48.67 अरब डॉलर और 43.56 अरब डॉलर रहे। ट्रंप द्वारा यह मानने के बावजूद कि उनकी कठोर आव्रजन नीति मध्यावधि चुनावों में रिपब्लिकन पार्टी के सफाए के कारणों में से एक थी, अमेरिका द्वारा भारत के लिए एच-1बी वीजा प्रतिबंधों में ढील दिए जाने के आसार नहीं हैं।

इस सदी में अमेरिकी मतदाताओं के मिजाज में आए उतार-चढ़ाव किसी भी सीधी समझ से परे हैं। 2001 में 9/11 हमलों के बाद उनका रुख मुसलमानों के प्रति बेहद कड़ा हो गया। पगड़ीधारी सिखों को गलती से मुस्लिम समझकर निशाना बनाया गया और उन्हें भी इसका शिकार होना पड़ा। नतीजतन, रूढ़िवादी जॉर्ज बुश को दूसरा कार्यकाल मिल गया। 2008 में अमेरिकी मतदाता न केवल एक उदारवादी, बल्कि केन्याई मुस्लिम पिता के बेटे और पहले अश्वेत ईसाई राष्ट्रपति बराक ओबामा की ओर मुड़े। 2016 में डॉनल्ड ट्रंप चुने गए, 2020 में उन्हें नकार दिया गया और 2024 में फिर वापसी हुई। महज दो साल बाद, उनके दक्षिणपंथी और अलोकतांत्रिक तौर-तरीकों को इस कदर खारिज किया गया कि मिस्र मूल के अब्दुल अल-सईद अमेरिका के पहले मुस्लिम सीनेटर चुने गए।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिकतर निगाहें ईरान के खिलाफ अमेरिकी युद्ध और रूस-यूक्रेन संकट पर ट्रंप के कदमों पर टिकी होंगी। कई लोगों को डर है कि वह तेहरान के साथ सशस्त्र संघर्ष फिर शुरू कर देंगे। संभावना यही है कि अगले सप्ताह शेनझेन में 21 देशों के एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग (एपेक) शिखर सम्मेलन से पहले ऐसा नहीं होगा। इस बैठक के इतर ट्रंप, चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के बीच एक त्रिपक्षीय मुलाकात की संभावना भी जताई जा रही है। ■

अगर मोदी चुनावी शिकस्त से कमज़ोर पड़ गए 'लेम डक' ट्रंप के आगे अब भी झुकते रहे, तो समझना चाहिए कि दाल में कुछ और काला है



फोटो: गेटी इमेजेज

मध्यावधि चुनावों के नतीजों के बाद, न्यूयॉर्क के मैनहैटन में लोग लोकतंत्र के समर्थन में मार्च कर रहे हैं

पानी का ठिकाना नहीं पर क्रूज़ का दिखावा

न अध्ययन, न तैयारी, बस सरकारी दावों के खेल में ढोल-मंजीरे, फूल-माला

पंकज चतुर्वेदी

अक्तूबर के आखिरी में सांसद मनोज तिवारी ने यमुना नदी में नहाते, डुबकी लगाते एक वीडियो सोशल मीडिया पर डाला। संदेश यह कि देखो, यमुना एकदम साफ है। उसके कुछ ही दिनों बाद 10 नवंबर को नमो यमुना रिवर सफारी नाम से दिल्ली में यमुना नदी पर पहली क्रूज़. सेवा की शुरुआत की गई। इसके वीडियो देखने पर भी भ्रम होगा। इसलिए सरकारी दावों का खेल समझना जरूरी है।

मनोज तिवारी जहां पर नहाते दिखे हैं या यह क्रूज़. जहां चल रही है, वह इलाका देखने की जरूरत है। यह क्रूज़. सोनिया विहार से जगतपुर तक करीब पांच किलोमीटर के रास्ते में चल रही। यह इलेक्ट्रिक-सोलर हाइब्रिड है, एक फेरे में अधिकतम तीस यात्री बैठ सकते हैं। 10 नवंबर को यह सेवा शुरू हुई है। तब के वीडियो में नारे लगाने और यात्रा करने वाले लोग दिख रहे हैं। दो दिन बाद 12 नवंबर को यह लेखक गया, तो बमुश्किल दस लोग थे। इसमें दो एसी लगे हैं और चार पंखे भी। बोट के पास पहुंचने पर सरकारी लोग साथ होते हैं जो तत्काल भीतर ले जाते हैं। इस क्रूज़. को चलाने का ठेका एमजी स्काइ एडवेंचर नामक कंपनी को दिया गया है। यह अंबाला की फर्म है जो मार्च 2021 में शुरू हुई थी। यह 20 करोड़ की परियोजना है जिसका अनुबंध मार्च 2025 में हुआ था लेकिन क्रियान्वयन में डेढ़ साल से अधिक लग गए।

दिल्ली में यमुना कोई 52 किलोमीटर का सफर करती है। सराय काले खान तक आने में उसका आधा सफर हो जाता है और इसमें ही अधिकांश नाले, औद्योगिक कचरा आदि मिलता है। आईटीओ पुल पर पहुंचते ही यह मृतप्राय हो जाती है। इसमें घुलित ऑक्सीजन की मात्रा नहीं मिलती, यानी ऑक्सीजन शून्य है।

क्रूज जिस जगतपुर से सोनिया विहार के बीच चल रहा, वह वजीराबाद बैराज से ऊपर पड़ता है, यानी शहर के बड़े नालों के गिरने से पहले का हिस्सा। इसलिए यहां पानी दिल्ली की बाकी यमुना के मुकाबले साफ है। इस खंड में घुलित ऑक्सीजन आम तौर पर छह से साढ़े आठ मिलीग्राम प्रति लीटर रहती है और बीओडी (बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड) दो से चार एमजी/लीटर के बीच है। यानी सरकार ने नदी का वही छोटा टुकड़ा चुना है जो पहले से थोड़ा-बहुत साफ है। इससे आगे बैराज के पास से हालत उलट जाती है क्योंकि नजफगढ़ और शाहदरा जैसे बड़े नाले बैराज के नीचे ही नदी में गिरते हैं। यहां ऑक्सीजन शून्य के करीब पहुंच जाती है और बीओडी पैंतीस से अस्सी के पार चला जाता है। मतलब कि असली काम, यानी नालों को रोकना, सीवेज शोधन संयंत्रों को ठीक से चलाना और औद्योगिक कचरे को नदी में जाने से रोकना, वहीं का वहीं है।





10 नवंबर को क्रूज़ सेवा शुरू हुई। दो दिन बाद 12 नवंबर को ही इसका आकर्षण खत्म हो गया और बमुश्किल दस लोग सवार हुए

दिल्ली में यमुना की पहचान आईटीओ और ओखला के पास झाग की तैरती मोटी परत से है। छठ के अवसर पर ऐसे ही पानी में उतरते लोगों की तस्वीरें अखबारों में छपती रही हैं। इस हालात को सुधारने की जगह सरकार नदी के दूसरे हिस्से में सैर का न्योता दे रही है। यह वैसा ही है जैसे घर में आग लगी हो और मालिक बैठक की सजावट बदलने में लगा हो।

चलेगी कैसे

जिस हिस्से में अभी क्रूज चलना शुरू हुआ है, इसी साल मई में कई जगह नदी की तलहटी दिख रही थी और केवल दो-तीन फुट गहरे गड्ढे बचे थे। इसी वजह से यही सेवा पहले फरवरी, फिर मई और बाद में अक्तूबर तक टाल दी गई। मानसून के बाद नदी भरी तो सेवा शुरू कर दी गई, यानी जिस नाव को साल भर चलना है, वह नदी के मौसम की मोहताज है। सरकार ने खुद भी बताया है कि मोटर नाव के लिए तीन से नौ फुट पानी चाहिए और दिल्ली जल बोर्ड इस खंड में उपयुक्त जलस्तर बनाए रखेगा। सवाल यह है कि नदी का पानी अब नाव की गहराई के हिसाब से रोका और छोड़ा जाएगा, तो यमुना के बहाव और पेयजल की प्राथमिकता का क्या होगा?

देखेंगे क्या?

जो पर्यटक पहले दो दिनों में सवार हुए, उन्होंने भी बताया कि दोनों किनारों पर देखने लायक कुछ नहीं मिलता- किनारे कहीं-कहीं लोग खड़े होकर हाथ हिलाते हैं और नाव में बैठे लोग जवाब देते हैं। कुछ देर यह अच्छा लगता है, पर सफर का आकर्षण नहीं बनता। दूसरे किनारे पर कुछ पक्षी जरूर दिखते हैं, लेकिन उन्हें देखने के लिए पांच सौ रुपये का टिकट नहीं चाहिए। जो थोड़ा बहुत देखने लायक है, वह नदी और खादर का अपना है, किसी सरकारी परियोजना का नहीं।

इस क्रूज़ की तुलना बनारस और कोलकाता से की जा रही है। बनारस में गंगा की सैर का मतलब है चौरासी घाटों के दर्शन, दशाश्वमेध की आरती और दीपों की कतारें। कोलकाता में हुगली की सैर में हावड़ा ब्रिज, विद्यासागर सेतु, प्रिंसेप घाट और पुराने घाट आते हैं, और लंबे रास्तों पर बेलूर मठ और दक्षिणेश्वर के दर्शन भी होते हैं। वहां नदी शहर के इतिहास और आस्था का हिस्सा है। जगतपुर से सोनिया विहार के बीच न घाट है, न स्मारक, न कोई ऐसा दृश्य जिसके लिए लोग खिंचे चले आएं। साबरमती की तर्ज पर यमुना रिवरफ्रंट की बात हो रही है, पर उस पर काम शुरू होने में अभी वक्त है, यानी पहले नाव उतार दी गई, मंजिल बाद में बनेगी।

किराये का सवाल

किराया पांच सौ रुपये प्रति व्यक्ति है। परिसर में प्रवेश के लिए पचास रुपये का अलग शुल्क है। अगर आप चारपहिया वाहन से गए हों, तो 30 रुपये और देने होंगे, हालांकि इसकी रसीद न मिलने वाली। टिकट खरीद चुके लोग कह रहे हैं कि यह ट्रेन टिकट लेने बाद प्लेटफॉर्म टिकट अलग से लेने की तरह है। वहां तक पहुंचना भी एक मुद्दा है। उसी इलाके में कुछ साल पहले सिग्नेचर ब्रिज को बड़ा पर्यटन केन्द्र बनाने की योजना बनी थी। दावा था कि दिल्ली को नई पहचान मिलेगी। आज वही पुल अंधेरे में डूबा रहता है। वहां तक पहुंचना मुश्किल है और भजनपुरा जैसे रास्तों पर हर समय जाम रहता है। यमुना में नावें पहले भी चलती रही हैं, पर वजीराबाद के इलाके में पर्यटक कभी नहीं आए, क्योंकि वहां ढांचा ही नहीं है। नाव उतार देने से ढांचा नहीं बन जाता।

जिस रास्ते में क्रूज़ चलाया गया है, वहां कुछ ही महीने पानी रहता है। यमुना के इसी खंड में कछुए, प्रवासी-देसी पक्षी और मछलियां मिलती हैं। उन्हें भी खतरे में डाल दिया गया है

पर्यावरण का सवाल

यह वही खादर है जहां कछुए और जलीय जीव मिलते हैं और सर्दियों में बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षी आते हैं, यानी शहर की यमुना का यही हिस्सा सबसे संवेदनशील और कीमती है। सरकार कहती है कि नावें इलेक्ट्रिक-सोलर हाइब्रिड हैं, इसलिए पर्यावरण के अनुकूल हैं। धुआं न होना अच्छी बात है, पर दुनिया भर में हुए अध्ययन बताते हैं कि नावों की आवाजाही का असर सीधे नदी के जीवों पर पड़ता है। यमुना पर अलग से कोई अध्ययन अभी सामने नहीं आया है, पर इन शोधों को देखना जरूर चाहिए।

कनाडा में 'एक्वैटिक कंजर्वेशन' पत्रिका में नॉर्दर्न मैप टर्टल पर मोटरबोट के असर पर छपे एक शोध में बताया गया कि धूप सेंकना कछुओं के लिए शरीर का तापमान और ऊर्जा संभालने का मुख्य तरीका है। शोधकर्ताओं ने पाया कि नाव की आहट से कछुए धूप सेंकना छोड़ देते हैं और ठंडे महीने में इस खलल से उनके मेटाबोलिज्म दर में करीब साढ़े सात प्रतिशत तक की कमी आ जाती है, जिसका असर उनके विकास और प्रजनन पर पड़ सकता है। अमेरिका के पर्ल नदी में लुप्तप्राय रिंग्ड सॉबैक कछुओं पर हुए अध्ययन में भी नावों की संख्या, गति और धूप सेंकने की जगहों की उपलब्धता का असर कछुओं के व्यवहार पर दिखा, और जहां नावें ज्यादा चलती थीं, वहां किशोर और युवा कछुए कम मिले।

पर्यावरणविदों का यह भी कहना है कि मोटर नावों की हलचल से किनारे कमजोर होंगे और कटाव तेज होगा। सरकारी अधिकारी इसे खारिज करते हैं। बेहतर होता कि इस बहस को अनुमान पर छोड़ने के बजाय नापा जाता, यानी क्रूज से पहले और बाद में किनारे, पानी और पक्षियों की गिनती के आंकड़े सामने रखे जाते।

यमुना को राष्ट्रीय जलमार्ग 110 घोषित किया गया है और जहाजरानी मंत्रालय तथा अंतर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण ने दिल्ली सरकार के कई विभागों के साथ समझौता किया है, यानी नदी को अब परिवहन और पर्यटन के गलियारे की तरह देखा जा रहा है। ■

बिलों का भुगतान नहीं, टूटते वादे और बढ़ती मौतें

सरकारी भुगतान में देरी ने महाराष्ट्र के ठेकेदारों को कगार पर ला खड़ा किया है

जयदीप हर्डीकर

नागपुर से लगभग 150 किलोमीटर दूर अमरावती में 19 अक्तूबर को ठेकेदारों ने महाराष्ट्र सरकार का बाकायदा अंतिम संस्कार कर डाला और पूरे रीति-रिवाजों के साथ उसकी शवयात्रा निकाली। 2 नवंबर को वे फिर से लोक निर्माण विभाग के कार्यालय के सामने जुटे, इस बार तेरहवीं-मृत्यु के तेरहवें दिन किया जाने वाला पारंपरिक अनुष्ठान करने के लिए। उनकी नाराजगी इसलिए है कि राज्य सरकार ने 2-3 साल पहले पूरे हो चुके काम के बकाये का भुगतान नहीं किया है। महाराष्ट्र स्टेट कॉन्ट्रैक्टर्स एसोसिएशन (एमएससीए) का दावा है कि एक लाख से अधिक ठेकेदार अपने 90,000 करोड़ से एक लाख करोड़ रुपये के बकाये का इंतजार कर रहे हैं।

अमरावती का आंदोलन इस सिलसिले की सबसे ताजा कड़ी भर है। एक साल से एमएससीए और उसकी शाखाएं नागपुर और अन्य शहरों में विरोध प्रदर्शन कर रही हैं। अगस्त 2025 में उन्होंने कोल्हापुर में 10 दिनों का धरना दिया था; वहीं अप्रैल 2026 में वे अपनी मांगों को लेकर मुंबई तक पहुंच गए थे।

ठेकेदारों का कहना है कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों को पूरा करने के वास्ते लिए गए कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है, मशीनरी धूल फांक रही है, कामगारों को मजदूरी नहीं मिली है और सामान देने वाले व्यापारियों ने उधार देने से इनकार कर दिया है। कर्जदाताओं के दबाव के चलते पिछले डेढ़ साल में नौ ठेकेदारों ने खुदकुशी कर ली है।

अमरावती जिले के जरुद के 52 वर्षीय ठेकेदार सुनील वागदरे की आत्महत्या ने 8 अक्तूबर को गुस्से की नई लहर पैदा कर दी। उनके परिवार ने पत्रकारों को बताया कि वर्ष 2023-24 में पूरे किए गए काम के एवज में उनका करीब ढाई करोड़ रुपया अटका हुआ है। सुसाइड नोट में सुनील ने कथित तौर पर अपने भतीजे से कहा कि वह परिवार की देखभाल करे, संपत्ति का एक हिस्सा बेचकर बैंक कर्ज, गोल्ड लोन और अन्य उधारी चुकाए। उनकी पत्नी वर्षा ने 'द इंडियन एक्सप्रेस' को बताया कि बार-बार गुहार के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ। रुंधे गले से कहा, 'अब मुझे बस सरकार से मेरा पति वापस चाहिए।'

वागदरे की मौत ऐसी अकेली घटना नहीं। नागपुर के ठेकेदार पी.वी. वर्मा ने करीब 40 करोड़ रुपये के सरकारी बकाये और निजी बाजार के भारी कर्ज के बोझ में दबकर सितंबर 2025 में जान दे दी। जुलाई 2025 में खुदकुशी करने वाले सांगली के हर्षल पाटिल के दोस्तों का कहना है कि उन्होंने पाइपलाइन और पानी की टंकी के काम के लिए उप-ठेकेदार के रूप में हाल ही में शुरुआत की थी। उनके परिवार ने पिछले साल बताया था कि तब उनका 60 लाख का भुगतान अटका था। नवी मुंबई के ठेकेदार गजानन देवकाते ने अगस्त 2026 में खुदकुशी कर ली। उनके परिवार का आरोप था कि ढाई करोड़ बकाये के भुगतान के लिए अधिकारियों ने रिश्वत मांगी थी। इन आरोपों की जांच हो रही है।

यह संकट एक बुनियादी सवाल खड़ा करता है: जो सरकार सार्वजनिक बुनियादी ढांचे का निर्माण कराती है, वह उन परियोजनाओं को जमीन पर उतारने वालों को अनिश्चित काल तक अपने दम पर आर्थिक बोझ उठाने के लिए कैसे छोड़ सकती है? ठेकेदार एक तरह से बिना अपनी मर्जी के राज्य का फाइनेंसर बन रहा है, जो कर्ज का पूरा जोखिम उठाता है।

कामकाज के ढांचे से जुड़ा एक और सवाल है। कोई बड़ी कंपनी टेंडर उठाकर काम छोटे ठेकेदारों को सौंप देती है, जो न तो सरकार से और न ही मुख्य ठेकेदार से भुगतान गारंटी के बिना इसे पूरा करते हैं। महाराष्ट्र के मामले में तो मुख्य ठेकेदारों और उप-ठेकेदारों, दोनों का ही भुगतान लटका हुआ है।

छोटे और मझोले ठेकेदारों के पास बड़े निगमों जैसी वित्तीय ताकत नहीं होती। वे सीमेंट, सरिया, पाइप और मशीनरी खरीदने, मजदूरों को दिहाड़ी देने और सामग्री की ढुलाई के लिए भारी ब्याज पर कर्ज उठाते हैं। काम पूरा करने के बाद बिल जमा करते हैं और प्रमाणीकरण तथा भुगतान का इंतजार करते हैं। इधर ब्याज बढ़ता जाता है, आपूर्तिकर्ता और मजदूर बकाये का तगादा करते हैं, और घर-गृहस्थी के खर्चे तो होते ही हैं। कुछ महीनों की देरी भी भारी चोट पहुंचाती है; दो या तीन साल की देरी तो पूरा कारोबार ही तबाह कर देती है।

समस्या, जैसा कि एमएससीए ने बार-बार रेखांकित किया है, ठेकेदारी की निचली कड़ियों में और भी विकराल है। अधिकतर प्रदर्शनकारी उप-ठेकेदार हैं। सड़क बनाने, स्कूल की मरम्मत और पानी पाइपलाइन बिछाने में उनका पसीना और पूंजी लगती है, लेकिन संबंधित विभागों के साथ उनका कोई नाता नहीं होता। जब मुख्य ठेकेदार को ही पैसा नहीं मिलता, तो उनकी स्थिति और नाजुक हो जाती है।

यह बात हर्षल पाटिल प्रकरण में पूरी तरह उजागर हुई। महाराष्ट्र जल संसाधन मंत्री गुलाबराव पाटिल ने कथित तौर पर कहा कि पाटिल संबंधित योजना में पंजीकृत नहीं थे और उनके नाम कोई बिल भी लंबित नहीं था। ठेकेदार संघ ने पलटवार करते हुए कहा कि उन्होंने बतौर उप-ठेकेदार काम किया था और वह मुख्य ठेकेदार को भुगतान मिलने पर आश्रित थे। कागजी नियमों में यह फर्क भले सही लगे, लेकिन जिसने वास्तव में पसीना बहाकर काम किया, उसकी दुर्दशा का इससे कोई हल नहीं निकलता।



कोल्हापुर में विरोध प्रदर्शन के दौरान ठेकेदारों और उप-ठेकेदारों ने बकाया भुगतान की मांग की

यह संकट काफी समय से गहरा रहा था। जुलाई 2025 में ठेकेदारों ने राज्य सरकार को ज्ञापन देकर दावा किया था कि विभिन्न विभागों में लगभग 89,000 करोड़ रुपये बकाया हैं। आज यह बढ़कर एक लाख करोड़ रुपये हो चुका है।

सरकार इन दावों को खारिज करती है। लोक निर्माण मंत्री शिवेंद्रराजे भोसले का कहना है कि पीडब्ल्यूडी के 17,000 करोड़ रुपये के बिल लंबित थे, जिनमें से 6,200 करोड़ का भुगतान कर दिया गया है। जमा किए गए, प्रमाणित, स्वीकृत और भुगतान किए गए बिलों के किसी स्वतंत्र, विभागवार ब्योरे के अभाव में दोनों आकलनों के बीच का यह अंतर आज भी जस का तस है।

महाराष्ट्र 2026-27 में लगभग 54 लाख करोड़ रुपये के अनुमानित जीएसडीपी के साथ देश की सबसे बड़ी राज्य अर्थव्यवस्था बना हुआ है। फिर भी इसके हालिया बजट में 1.50 लाख करोड़ रुपये के राजकोषीय घाटे और 40,552 करोड़ रुपये के राजस्व घाटे का अनुमान है। कुल देनदारियां जीएसडीपी के 20.4 प्रतिशत तक पहुंचने का अनुमान है। वेतन, पेंशन और ब्याज भुगतान जैसे अनिवार्य मदों पर करीब 3.38 लाख करोड़ रुपये का खर्च तय है। राज्य का सार्वजनिक कर्ज 10 लाख करोड़ तक पहुंच गया है।

दिवंगत अजित पवार, जिनके पास वित्त मंत्रालय था, ने ठेकेदारों को भरोसा दिया था कि उनके बिलों का भुगतान किस्तों में किया जाएगा। इस साल के शुरू में विमान दुर्घटना में उनकी मृत्यु ठेकेदारों के लिए बड़ा झटका साबित हुई, जो उनपर भरोसा कर रहे थे। तब से यह विभाग मुख्यमंत्री फडणवीस के पास है। जिन अधिकांश कार्यों के भुगतान का इंतजार है, उन्हें 2024 से पहले की एकनाथ शिंदे सरकार के दौरान मंजूरी दी गई थी।

ठेकेदार संगठनों का आरोप है कि नवंबर 2024 के विधानसभा चुनावों से ठीक पहले पर्याप्त बजटीय प्रावधान के बिना ही बेतहाशा वर्क आर्डर जारी कर दिए गए थे। कुछ इंजीनियरों का दावा है कि इन वर्क आर्डरों का मूल्य उपलब्ध बजट का कई गुना था। धन की उपलब्धता सुनिश्चित किए बिना परियोजनाओं को मंजूरी वित्तीय अनुशासन की गंभीर विफलता है। विपक्षी नेताओं और ठेकेदार संघों का आरोप है कि राजनीतिक रसूख वाले ठेकेदारों और बड़ी कंपनियों को तरजीही भुगतान किया जाता है, जबकि छोटे ठेकेदार राह देखते रह जाते हैं।

जल जीवन मिशन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। ठेकेदारों का दावा है कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से वित्तपोषित इस ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के तहत दसियों हजार करोड़ रुपये अटके हैं। यह तय करना बेहद जरूरी है कि कितनी राशि आवंटित हुई, केन्द्र ने कितना हिस्सा जारी किया, महाराष्ट्र का अंशदान कितना रहा, कितना काम पूरा होकर प्रमाणित हुआ और वास्तव में ठेकेदारों तक कितना पैसा पहुंचा। कांग्रेस पार्टी ने चल रही योजनाओं के समग्र ऑडिट की बार-बार मांग की है।

महाराष्ट्र सरकार ने हाल ही में पीडब्ल्यूडी ठेकेदारों के लिए 'ट्रेड रिसीवेबल्स इलेक्ट्रॉनिक डिस्काउंटिंग सिस्टम' (टीआरईडीएस या ट्रेड्स) को मंजूरी दी है। यह व्यवस्था ठेकेदारों को स्वीकृत इनवॉयस के बदले वित्तीय संस्थानों से अग्रिम राशि जुटाने और बाद में सरकार द्वारा उन संस्थानों को भुगतान करने की अनुमति देती है। यह तात्कालिक नकदी तो मुहैया कराती है, लेकिन समय पर होने वाले सरकारी भुगतान का विकल्प नहीं बन सकती। न ही यह उन बिलों का समाधान करती है जो प्रमाणित नहीं हुए हैं, और न ही उन उप-ठेकेदारों को राहत देती है जिनकी इस प्रणाली तक सीधी पहुंच नहीं।

एमएससीए की मांग है कि राज्य सरकार बिल जमा करने, सत्यापन और भुगतान की तारीखों का विभागवार रजिस्टर उपलब्ध कराए। इसके साथ ही समयबद्ध भुगतान तंत्र, स्वीकृत बिलों को दबाकर बैठने वाले अधिकारियों की जवाबदेही तय करने और बिना पर्याप्त बजटीय प्रावधान जारी किए गए वर्क आर्डरों के गहन ऑडिट की मांग की गई है। उप-ठेकेदार भी मुख्य ठेकेदारों और सरकारी विभागों के बीच भुगतान विवादों के परिणामों से बचने के लिए कानूनी संरक्षण चाहते हैं। ■

कुछ महीनों की देरी भी छोटे व्यवसायों को नुकसान पहुंचा सकती है; दो-तीन साल की देरी उन्हें बर्बाद कर सकती है

संडे नवजीवन
रविवार, 15 नवंबर, 2026 Iwww.navjivanindia.com
Published Date 15 November, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

आज़ादी की लड़ाई कभी ख़त्म नहीं होती

आज के सत्ताधीश विलोम बन गए हैं, हमारी स्वतंत्रता की दुर्दशा कर रहे हैं

कृष्ण प्रताप सिंह

पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने दूरदर्शी नायक थे, उतने ही बेहतरीन लेखक और वक्ता भी। इसलिए आधुनिक भारत के निर्माता, पहले प्रधानमंत्री, नौ साल जेल में बिताने वाले स्वतंत्रता के अप्रतिम सेनानी, बच्चों के प्यारे चाचा और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के लोकदेव कहने के बावजूद लगता है कि उनका परिचय अधूरा रह गया।

बहरहाल, जानकारों की निगाह में उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाषण वह है, जो उन्होंने देश की स्वतंत्रता के पहले सूर्यादय से पूर्व 14 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि संविधान सभा को संबोधित करते हुए दिया और जिसे 'ट्रिस्ट विद डेस्टिनी' (नियति से साक्षात्कार) के नाम से जाना जाता है। बीसवीं शताब्दी के दुनिया के सर्वश्रेष्ठ भाषणों में गिने जाने वाले इस संबोधन में उन्होंने कहा था कि बहुत साल पहले हमने नियति से एक वादा किया था, और अब समय आ गया है कि हम उसको निभाएं.... मध्यरात्रि के ठीक बारह बजे, जब सारी दुनिया सो रही होगी, भारत जीवन और स्वतंत्रता के लिए जाग उठेगा।

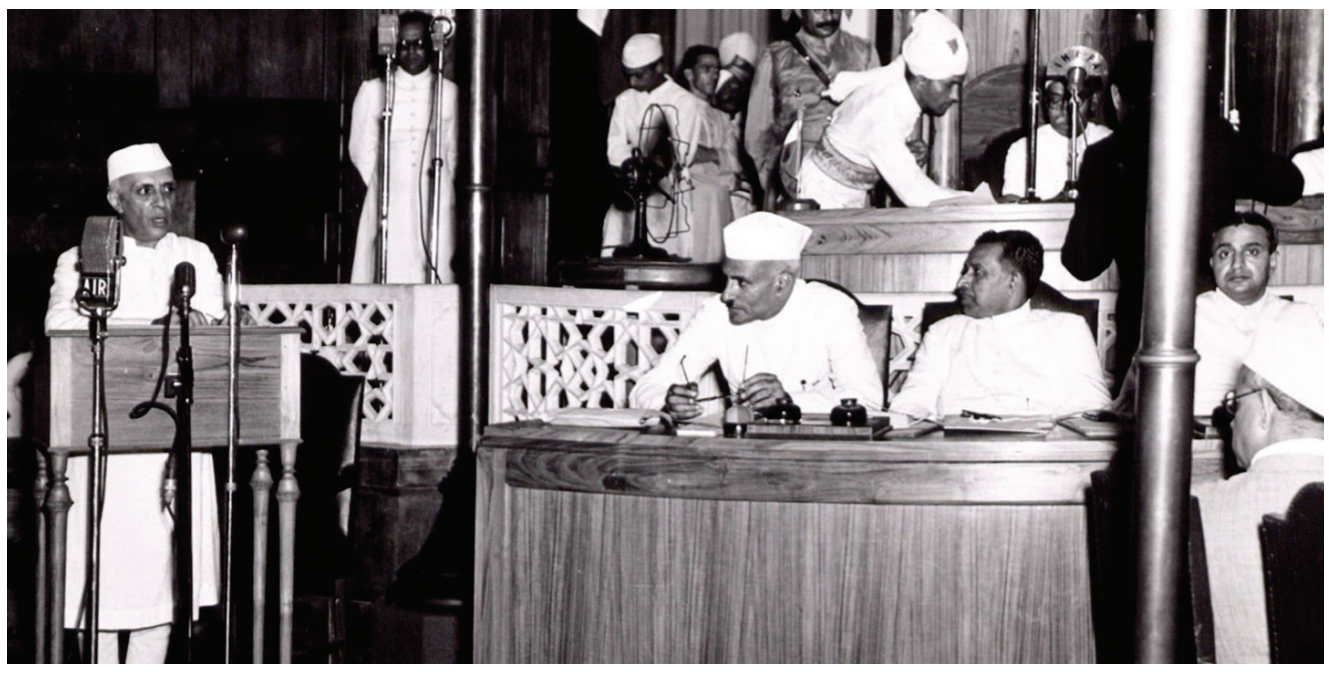
लेकिन हमारे आज के सत्ताधीश जिस तरह उनके विलोम बन गए हैं, हमारी स्वतंत्रता (साथ ही लोकतंत्र) की जैसी दुर्दशा कर रहे हैं और जिसके चलते हम एक बार फिर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के मुहाने पर आ खड़े हुए हैं, उसके लिहाज से देखें तो पंडित नेहरू ने सबसे महत्वपूर्ण बात 1960 के स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त को लालकिले की प्राचीर से प्रधानमंत्री के तौर पर देशवासियों को संबोधित करते हुए कही थी। उनके शब्द थे : आजादी की लड़ाई हमेशा जारी रहती है। कभी उसका अंत नहीं होता। हमेशा उसके लिए परिश्रम करना पड़ता है, हमेशा उसके लिए कुर्बानी देनी पड़ती है, तब वह कायम रहती है। जब कोई मुल्क या कौम ढीली पड़ जाती है, कमजोर हो जाती है, असली बातें भूलकर छोटे झगड़ों में पड़ जाती है, उसी वक्त उसकी आजादी फिसलने लगती है। (इसलिए) आजादी की सालगिरह कोई तमाशा नहीं एक बार फिर से इकरार करने का दिन है-फिर से प्रतिज्ञा करने का, फिर से जरा अपने दिल में देखने का कि हमने अपना कर्तव्य पूरा किया कि नहीं।

उनका मतलब साफ था कि हर पीढ़ी को अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई खुद लड़नी और खुद ही उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। यह नहीं हो सकता कि उसके पुरखों ने कभी जो लड़ाई लड़ दी थी, उसी से हमेशा उसका काम चलता रहे। हां, वह लड़ाई उसकी पथप्रदर्शक हो सकती है, उसे भविष्य की राह दिखा सकती है।

उन्होंने देशवासियों से यह भी पूछा था कि आजादी किसके लिए आई? क्या चंद लोगों के लिए आई? जवाहरलाल के लिए आई कि उसको आपने चंद रोज के लिए प्रधानमंत्री बना दिया? फिर खुद ही उत्तर दिया था : नहीं, वह सबके लिए आई।

वह वास्तव में 'सबके लिए' बनी रहे, इसके लिए वे स्वयं अपने कर्तव्यों और नैतिकताओं की कितनी फिक्र करते और कैसी शिद्दत से उनका पालन करते थे, इसे जानने के लिए भी कोई बड़ा प्रयास करने या बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है।

इस एक बात से ही समझा जा सकता है कि अपने उक्त संबोधन के दो साल बाद 1962 के लोकसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश की बाराबंकी लोकसभा सीट पर कांग्रेस के प्रत्याशी के लिए वोट मांगते वक्त मतदाताओं से किया अपना एक वादा उन्होंने इसके बावजूद निभाया था कि मतदाताओं ने उनकी एक नहीं सुनी थी और कांग्रेस के प्रत्याशी को वह चुनाव हरा दिया था।



14 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि संविधान सभा को संबोधित करते पंडित जवाहर लाल नेहरू

दरअसल, उस चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी हुसैन कामिल किदवई और सोशलिस्ट पार्टी के नेता रामसेवक यादव के बीच बेहद कड़ा संघर्ष था। ऐसे में नेहरू किदवई के लिए वोट मांगने बाराबंकी आए तो उनकी सभा में शामिल छात्रों ने बाराबंकी शहर में एक डिग्री कालेज स्थापित कराने की मांग कर डाली। सभा के बाद उन्होंने इसे लेकर नेहरू को घेरा भी।

इस पर उन्होंने उनकी मांग पूरी करने का वादा किया और अपने साथ चल रहे उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्त से कहा कि वह चुनाव खत्म होते ही बाराबंकी में डिग्री कालेज की स्थापना की प्रकिया आरंभ करा दें। इससे छात्र अपनी मांग पूरी होने को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हो गए, लेकिन मतगणना में किदवई चुनाव हार गए तो उनको लगा कि अब शायद डिग्री कालेज के बजाय वादाखिलाफी ही उनके हाथ आए। मगर कुछ ही दिनों बाद वह यह जानकर चकित रह गए कि नेहरू ने अपना वादा याद रखा है और उसे याद दिलाते हुए मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्त को पत्र लिखा है कि वह उनके उक्त वादे के मुताबिक बाराबंकी में डिग्री कालेज की स्थापना के लिए बिना देर किए जरूरी कदम उठाएं। अपने पत्र में उन्होंने इस बात पर खासा जोर दिया था कि छात्रों और मतदाताओं में यह संदेश कतई नहीं जाना चाहिए कि हम चुनाव हार गए तो अपना वादा ही नहीं निभा रहे।

> नेहरू का मतलब साफ था कि हर पीढ़ी को अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई खुद लड़नी और खुद ही उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। यह नहीं हो सकता कि पुरखों की लड़ाई से ही काम चलता रहे

अंततः उनका वादा पूरा हुआ, उक्त डिग्री कालेज बना और 27 मई, 1964 को उनके निधन के बाद उसके नाम के साथ उनका नाम भी जोड़ दिया गया। आज की तारीख में उसको जवाहरलाल नेहरू स्मारक पोस्ट ग्रेजुएट कालेज के नाम से जाना जाता है और उसके नाम छोटी बड़ी कई उपलब्धियां दर्ज हैं।

दूसरे पहलू पर जाएं तो हम जानते हैं कि नेहरू का अपनी आखिरी सांस तक अपने गृहनगर इलाहाबाद से बहुत प्रगाढ़ संबंध रहा था। वहां के एक आयोजन में उनके द्वारा महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की ओर इशारा करके सुनाए गए एक किस्से की अभी भी खूब चर्चा की जाती है। यह जताने के लिए उनके निकट अदीबों और विद्वानों का कितना मान था और वह उनका कितना सम्मान करते थे।

वह किस्सा यों है कि एक राजा के दो बेटों में एक चतुर-सुजान और विद्वान तो दूसरा मूर्ख था। वक्त के साथ दोनों बेटे बड़े और राजा बूढ़ा हो गया तो उसने अपने मूर्ख बेटे को राजा बनाने की घोषणा कर दी, क्योंकि उसके अनुसार वह किसी और काम के लायक था ही नहीं। इस बाबत सवाल उठाए जाने पर उसने कहा कि उसका दूसरा चतुर और विद्वान बेटा कवि बनेगा, क्योंकि वह महान कार्य करने के लिए बना हुआ है।

कहते हैं कि यह किस्सा सुनाकर उन्होंने अपने गले से फूलों की माला उतारी और श्रद्धाभाव से सामने श्रोताओं में बैठे महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के गले में नहीं, कदमों में डाल दी थी। भाव यह था कि 'आप जैसे कवि के आगे मुझ नाचीज़ नेता की भला क्या बिसात?' स्वाभाविक ही इससे निराला खासे गदगद हो उठे थे। इस सिलसिले में एक अन्य महाकवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का नेहरू से जुड़ा 1957 का एक लेखन भी बहुत यादगार है, जो तब का है, जब नेहरू ने एक सप्ताह की छुट्टी लेकर दून घाटी में विश्राम करने का कार्यक्रम बनाया था।

'मुक्तिबोध' ने उस वक्त के प्रतिष्ठित 'नया खून' नामक पत्र के अप्रैल, 1957 के अंक में 'दून घाटी में नेहरू' शीर्षक से टिप्पणी लिखकर उक्त कार्यक्रम का भरपूर स्वागत करते हुए लिखा था कि जो लोग जिम्मेदारी के काम पर हैं, उनके लिए आराम भी एक कर्तव्य होना चाहिए। उनके ही शब्दों में 'अगर हम चाहते हैं कि पंडित नेहरू दीर्घकाल तक हमारे बीच रहें तो उनके लिए विश्राम का नियम बना देना अनुचित न होगा।' साथ ही, उन्होंने उम्मीद जताई थी कि प्रकृति से संपर्क और उसके उत्फुल्ल सौंदर्य से साक्षात्कार नेहरू को निस्संदेह, ताजा बना देगा और उनकी रूह में नई ताकत फूंक देगा।

नेहरू की इस छुट्टी के दौरान ही मसूरी में डेवलपमेंट कमिश्नरों का सम्मेलन आयोजित कर उसमें उनके भाषण का कार्यक्रम रख दिया गया तो मुक्तिबोध ने यह लिखकर उसकी आलोचना की थी कि 'नेहरू को शांति का पूरा एक हफ्ता भी नहीं मिल पाएगा।'

इसी टिप्पणी में उन्होंने आगे लिखा था : 'एक बार एक बीस साल के नौजवान ने मुझसे पूछा कि नेहरू जी क्या सोचते-सोचते सोते होंगे? तीसरे विश्वयुद्ध के दृश्य, लोहा और इस्पात के विशाल नए कारखानों का धुआं, नए उठते हुए शहरों की मीनारें, पृथ्वी पर लहराते कई देशों को जोड़ते अथाह नीले समुद्र, कूटनीतिक चर्चाओं में उठाए गए तर्कों और दलीलों आदि-आदि के बिम्ब देखते हुए उनकी आंख लग जाती होगी। शायद हां, शायद नहीं।...इसीलिए, हम चाहते हैं, चंद रोज़ ही क्यों न सही, नेहरू को नियमपूर्वक उसी तरह विश्राम कर लेना चाहिए, जिस प्रकार ठंडी लड़ाई (शीत युद्ध) के हजार ठंडे लेकिन चमकते हुए अंगारों के बावजूद अमेरिकी प्रेसीडेंट आइज़नहावर तथा अन्य यूरोपीय नेता समय पाकर विश्राम, मनोरंजन और खेलकूद में समय बिताते हैं।'

इससे पता चलता है कि अपने समकालीन साहित्य सर्जकों से नेहरू के (प्रधानमंत्री बनने से पहले भी और बाद में भी) कैसे आत्मीय और स्नेहसिक्त सम्बन्ध हुआ करते थे।

1964 में उनका निधन हो गया तो 'शायर-ए-इंकलाब' कहलाने वाले जोश मलीहाबादी ने उनको अनश्वर बताते हुए उनको 'रूह-ए-इंसानियत का सिजदा' पेश किया था। उन्होंने लिखा था कि सच्ची सियासत वह होती है, जो इंसानी नस्ल को फूलों की सेज पर लिटाने के लिए खुद कांटों पर चलती और उसके पेट भरने के लिए खुद अपने पेट पर पत्थर बांधकर काम करती है। लेकिन आज की (यानी उनके वक्त की) सियासत इस कदर बदसूरत हो चुकी है कि वह अवाम को कांटों पर चलाकर खुद फूलों की सेज पर लेटती है।... नेहरू की सियासत चूंकि इस सियासत के बिल्कुल बरअक्स थी, इसलिए कहा जाता है कि वह अच्छे सियासतदां नहीं थे और मैं इसकी तस्दीक करता हूं। ■

चतुरों की दुनिया में बच्चा बन जाने की हसरत

चतुरों ने संसार को विकृत बनाने में नहीं छोड़ी है कोई कसर

राजेंद्र चन्द्रकान्त राय

हमारी दुनिया चतुरों से भर गई है। चतुरों ने संसार की सूरत बदल कर रख दी है। इस बदली हुई सूरत में मासूम और भोले लोगों पर हर दिन आघात हो रहे हैं। चतुरों में बड़े-बड़े नाम हैं। कोई समूचे संसार को अपने अहंकार की जद में ले आने के लिए व्याकुल है, तो कोई अपने ही मजहब के दूसरे समुदाय के देश पर बम बरसा रहा है। कोई सबको समान मानने के विचारों के सर्वोच्च शिखर से लुढ़क कर एक छोटे से देश को काबू करने में सालों से हलाकान हो रहा है। कोई अनंत सत्ता के लिए सारी संवैधानिक संस्थाओं का कचूमर निकाले पड़ा है, तो कोई बैंकों से हजारों करोड़ रुपये उड़ा कर मजे से बांसुरी बजा रहा है। कोई राम जी का धनुष ही चुरा कर चंपत हो गया है, तो कोई न्याय की देवी की आंखों पर बंधी हुई पट्टी की असली व्याख्या करने में जुटा हुआ है। साइबर फ्राड के आकाओं से भयभीत हैं लोग और एआई के आदमी के हाथों से बाहर चले जाने के अंदेशे ने डर का घटाटोप फैला रखा है।

ऐसी भीषण हो गई दुनिया में बच्चा हो जाने की हसरत कुलबुला रही है। बच्चों की दुनिया फरिश्तों की दुनिया कही जाती है। उनकी निर्दोष हंसी हजारों दुनियावी तकलीफों पर भारी हो जाती है। बच्चे जब हमारी दुनिया में आते हैं, तब वे पूरी तरह से मासूम और भोले होते हैं। उस वक्त उन पर हमारी मतलबी, क्रूर, झूठी, कपटी तथा बुराइयों से भरी-पूरी दुनिया का कोई प्रभाव नहीं होता। वे प्रेम और कोमलता से लबरेज होते हैं। जहां से भी उन्हें प्रेम और कोमलता मिलती है, वे उसी तरफ बढ़ जाने में विलंब नहीं करते। इसीलिए वे पशु-पक्षियों और हम-उम्र बच्चों की ओर ज्यादा खिंचाव महसूस करते हैं।

हम और हमारी नकली दुनिया उन्हें धीरे-धीरे अपने रंग में रंगने की कोशिशों में लग जाती है। हम खुद जैसे होते हैं, अपने बच्चों को भी वैसा ही बना डालने पर आमादा हो जाते हैं। अक्सर यह कोशिश भी किया करते हैं कि हम जैसे नहीं हैं या हम जैसा नहीं हो पाए, अपने बच्चे को वैसा बना डालें। इस तरह, बच्चों के स्वाभाविक विकास के लिए उपयुक्त, सहज और नैसर्गिक वातावरण उपलब्ध कराने की बजाय, हम अपने आप को और अपनी मान्यताओं को उन पर लादने लगते हैं।

एक पौधे के स्वतंत्र और सरल-रेखिक विकास के विपरीत हमारी मानसिकता उसे 'बोनसाई' में बदल डालने की होती है। एक कटा-छंटा, हमारी मन-मर्जी से तोड़ा-मोड़ा गया अपने विकास तथा कद को गवां चुका, ठिगना-सा पौधा हमें प्यारा और दर्शनीय लगता है। हमारी बैठक के कोने में रखे गमले में जब वह अपने अपाहिजपने पर बिसूर रहा होता है, ठीक उसी समय हम गर्वित हो रहे होते हैं कि देखो यह है मेरी कृति। प्रकृति ने इसे जो रूप, आकार और स्वच्छंदता अता की थी, वह तो नितांत अवांछित ही थी। अपनी चुतुराई, विद्वता और कला से काट-छांट कर मैंने उसे अपने और दूसरे लोगों के अनुरूप बना लिया।

बना लिया? बनाना तो सृजन है। निर्माण है। रचना है। काट-छांट, तोड़-मरोड़ और उसे उसकी स्वच्छंदता से विलग कर डालने का अपराध, सृजन कैसे हो सकता है? पर हम तो परिभाषाओं को भी तोड़ने-मरोड़ने को तैयार हैं। यह सृजन नहीं, ध्वंस है। प्रकृति के विरुद्ध कृत्रिमता का उत्सव है। नैसर्गिकता के प्रति आदर के खिलाफ, कतर डालने की कुंठा का प्रदर्शन है।

अति चैतन्य, सजग और शिक्षित होने के कारण हम अपने बच्चों के साथ अक्सर यही सब करते हैं। नतीजा यह निकलता है कि हमारे हाथों बच्चों की स्वतंत्रता, विकास और खुशियों को तिलांजलि मिल जाती है। हम अपने ही अर्थों में बच्चे के निर्माण में लगे रहते हैं। इसी तरह किताबों, अखबारों तथा बाल-चिकित्सकों की व्यवसायिक-सलाहों पर अमल करने के लिए जब हम, कमर कसकर पिल पड़ते हैं, तब इस परम-सत्य को भुला बैठते हैं कि बच्चा भी अपनी इच्छाओं, रुचियों, समय और भावनाओं का उतना ही स्वामी होता है, जितना कि एक वयस्क।

> बच्चों से ही बचेगी दुनिया। जहां सरल और भोला होना गुनाह हो गया हो, उसे सरलता और भोलापन ही उपलब्धि बनाएगा

जरा इस बात पर गौर कीजिए कि क्या बुद्ध, महावीर, ईसा, पैगंबर या गांधी माता-पिता अथवा समाज के द्वारा 'निर्मित' किए गए? सत्य इसके उलट है, इन महापुरुषों ने ही समाज को शिक्षित किया। उसे दृष्टि दी, आदर्श दिए और उसे गढ़ने का काम किया। जरा गिनकर तो देखिए कि हमने अपने तरीकों से कितने बुद्ध, महावीर, ईसा या पैगंबर निर्मित किए? महापुरुषों का निर्माण तो बहुत बड़ी बात है, हम तो अपने राष्ट्र के लिए बेहतर नागरिक तक गढ़ने में असमर्थ होते जा रहे हैं। उल्टे हमने ऐसे राजनेता गढ़े जो संविधान से बड़े हो गए। ऐसे आईएएस रचे जो भ्रष्टाचार में आकंठ डूब गए। यहां तक कि हमारे गढ़े रामों ने दशरथों को ही वनवास पहुंचा दिया। हत्यारों, लोभियों, हिंसकों और देशद्रोहियों की फसलें अगर लहलहाती हुई नज़र आ रही हैं, तो उसकी जिम्मेदारी भी हमीं को लेनी होगी। शिवाजी को रचने वाली जीजाबाई और गलत निर्मिति हो जाने पर अपने ही पुत्र पर बंदूक चला देने वाली मदर-इंडिया को तो हम अस्वीकृत ही कर चुके हैं।

असल में हमें बच्चे का निर्माता बनने की बजाय उसका अध्येयता बनना होगा। हमने अपने आप को निर्माता की ग़लत भूमिका में डाल रखा है।

हमने पेड़ों से फल तोड़े और उसके लिए न पेड़ से अनुमति ली और न ही उस पर जीवित रहने वाले पक्षियों से। पर हम चोर न कहलाए। हमने नदियों-तालाबों से पानी का जी भरकर दोहन किया। मछलियों, मेंढकों, घड़ियालों से अनुमति की दरकार तक न समझी। फिर भी चोर न हुए। जंगलों, पहाड़ों, भूमियों को अपने स्वार्थ के लिए मिटाने पर तुले हुए हैं, पर चोर की बजाय महाजन कहलाते हैं। बच्चे ने माखन खा लिया है और वह चोर हो गया। अपराधी हो गया। हमने उसके मन में अपराध-बोध बो दिया। वह हमें इससे भी बड़े-बड़े अपराध करते देखता है और असमंजस में पड़ जाता है। हमारा द्वैत-भाव उसके मन में प्रश्न उत्पन्न करता है। हम उनके जवाब नहीं देते। उसे अपनी तरह बनाने में जुटे रहते हैं।

बालक कृष्ण के रूप में माखन-चोरी का कृत्य, अपनी प्रिय वस्तु को हासिल करके चख लेने का एक जोखम भरा खेल भर है। कौतुक। खाने की वस्तु है और छींके पर टांगकर पहुंच से दूर कर दी गई है। कृष्ण ने अपने मित्रों के साथ मिलकर उसे सबके लिए सुलभ बनाया। मिल-बांटकर खाया। बाद में होने वाली क्रांतियों ने भी यही किया। जो संपत्ति पहुंच से दूर महलों-दुर्गों में टंगी हुई थी, उसे सर्व-सुलभ बनाया। इसके लिए इतिहास ने गांधी, लेनिन या हो ची मिन्ह को चोर नहीं कहा। वे नायक कहलाए। पर कृष्ण की, यानी एक बच्चे की इसी काम के लिए शिकायत हुई। सज़ा दिए जाने के लिए उन्हें ओखली से बांधा गया। ओखली से बंधे बच्चे ने यमलार्जुन को शाप मुक्त किया। यह एक प्रतीक है। तो बच्चा यहां सीख रहा है या सिखा रहा है? मिट्टी खाकर सृष्टि का दिग्दर्शन कराने वाला बच्चा, अपनी माता का अनुगामी है या पथ-प्रदर्शक? तो सोचना होगा कि सीखने की ज़रूरत किसे है? किसे अपनी भूमिका के नकली खोल से बाहर आना है? बच्चे को या माता, पिता और गुरु को?

सत्य यही है। बच्चा हमारी कक्षा नहीं, हमारा गुरु है। वह एक किताब है। एक रहस्य है। बच्चा एक संसार है। हम वयस्कों को ही उसे पढ़ने, समझने और जानने के काबिल बनना होगा। एक बच्चा जिस दिन हमारे जीवन में पदार्पण करता है, उसी दिन हमें अपना 'गुरु' उपलब्ध हो जाता है। तभी हमें हमारा अर्थ भी मिल जाता है। हम अपना अस्तित्व अर्जित करते हैं। उसी दिन से अपने को जानने की पाठशाला मे हमें प्रवेश मिलता है। हमारे कवच खुलते हैं। जीवन का पुनरारंभ होता है। उम्र के उत्तरोत्तर पड़ावों और अहंकार के पहाड़ों से नीचे उतरकर, जीवन के शीतल जल में पांव डालने पर, जो आत्मिक-अहसास होता है, उसे समझने का उपक्रम है।

आइए, थोड़ा सा बच्चा हो जाएं! आइए! थोड़ी सी नादानियां करें! आइए! थोड़े से नटखट बनें ताकि बचपन को बचाने की काबिलियत पैदा हो सके। चतुरों ने तो संसार को विकृत बनाने में कसर न छोड़ी। बच्चों से ही बचेगी दुनिया। जहां सरल और भोला होना गुनाह हो गया हो, उसे सरलता और भोलापन ही उपलब्धि बनाएगा। बच्चे उम्मीद हैं। बच्चे भरोसा हैं। बच्चे भवितव्य हैं। ■



एक कार्यक्रम के दौरान एक बच्चे को दुलारते पंडित जवाहरलाल नेहरू